योगविद्या

वर्ष 7 अंक 6
जून 2018
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2018

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 60 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : राज योग यात्रा सत्संग 2017

अन्दर के रंगीन फोटो : 1 & 4: होली 2018;
2: यौगिक जीवनशैली अनुभव की कक्षा, 2017–2018;
3: यौगिक अध्ययन 2017–2018 का दीक्षान्त समारोह

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

मौन-साधना का महत्त्व

मौन-व्रत से संकल्प-शक्ति का विकास होता है। मौन-व्रती वाणी पर संयम और नियंत्रण स्थापित कर लेता है। मौन धारण करने से न केवल सत्य-पालन में सहायता मिलती है, बल्कि साथ-साथ क्रोध के दमन में भी सहयोग मिलता है। भावुकता पर रोक लगायी जाती है और चिड़चिड़ापन दूर कर दिया जाता है। मौनी बात भी करेंगे तो नपे-तुले शब्दों में ही और जो कुछ बातें उनके मुँह से निकलेंगी, वे सुनने वालों पर अपना प्रभाव कर जाएँगी।

यदि वातावरण और समाज-संगति ऐसी है कि तुम मौन का अभ्यास न कर सको तो स्वयं को जहाँ तक हो सके व्यर्थ की गपशप, परनिन्दा, शिकायतों, आलोचनाओं तथा बड़ी-बड़ी, लम्बी-चौड़ी बातों से दूर ही रखो। जहाँ गरम बहस या विवाद चल रहा हो, वहाँ जाने से तो अपने आप को जरूर बचाना चाहिए।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 7 अंक 6 • जून 2018
(प्रकाशन का 56 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 ईश्वर पर भरोसा रखो और सत्कर्म करो
8 ध्यान और स्वास्थ्य
14 प्राण और चित्त शक्ति का समायोजन
20 प्रसन्न कौन?
22 योगनिद्रा और मन
25 योगनिद्रा का एक प्रेरक अनुभव
26 कर्मयोग और जीवन का सुनियोजन
37 यौगिक अध्ययन का अविस्मरणीय अनुभव
38 सत्यम् वाणी
51 आरोग्य की ओर योग यात्रा

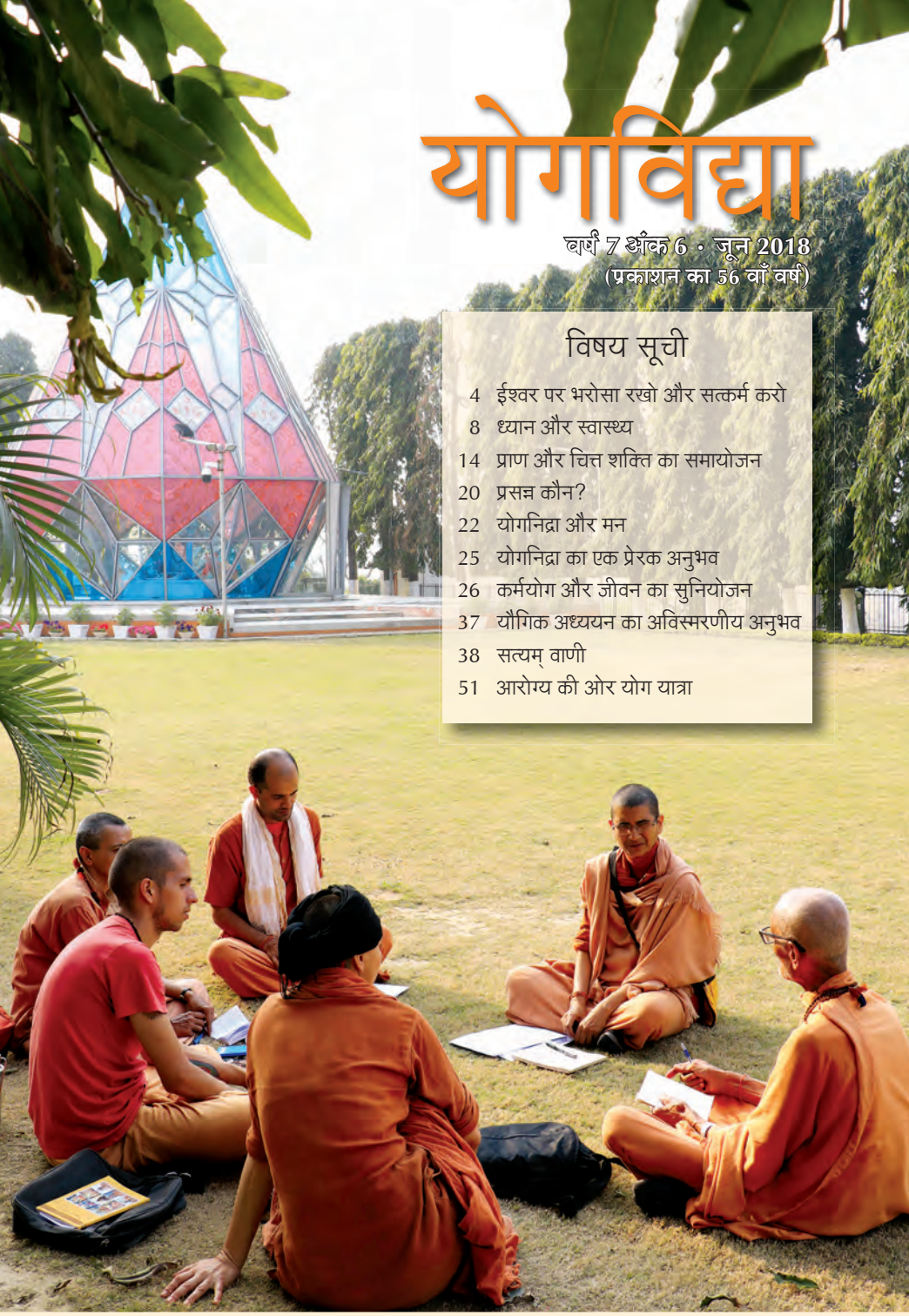

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

ईश्वर पर भरोसा रखो और सत्कर्म करो

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

जीवन की परीक्षाओं और कठिनाइयों के आ जाने पर हतोत्साहित होना और शोक करना धीर साधकों को शोभा नहीं देता। ईश्वर महान् है और उसकी बातें समझना सरल नहीं है। वह कृपानिधि है। परीक्षा की घड़ियों में क्या तुम ईश्वर से प्रार्थना करते हो, ईश्वर-कृपा की याचना करते हो? हम अपने जीवन की नित्य की क्रियाओं में ईश्वर को भुला देते हैं, इसीलिए सारे दु:ख-कष्ट आ घेरते हैं। वास्तव में देखा जाए तो ये सारे दु:ख-कष्ट प्रच्छन्न रूप में वरदान ही हैं ताकि हमारा अहंकार दूर हो। ये हमें शुद्ध बनाने हेतु भगवत्प्रसाद हैं। हमें जो-जो विपत्तियाँ आ घेरती हैं, उनके पीछे कोई-न-कोई महान् प्रयोजन होता है। विपत्तियों की भट्टी में तपे बिना जीवन खरा सोना नहीं बनता।

मान लो, किसी के शरीर में कहीं एक फोड़ा हो गया है। उसमें मवाद भर गया है। उसे भारी पीड़ा हो रही है। मवाद ही पीड़ा का असली कारण है। मवाद निकालने के लिए डॉक्टर छुरे से फोड़े को चीरना चाहता है। वह व्यक्ति अज्ञानवश यह समझ सकता है कि डॉक्टर मुझे मारने या घायल करने आया है। वस्तुत: डॉक्टर तो उसका हितचिन्तक है। वह फोड़े को चीर कर उसे पीड़ा से मुक्ति दिलाना चाहता है।

इसी प्रकार हम भी अज्ञानवश अपने ऊपर आने वाली सभी विपत्तियों और विफलताओं के लिए ईश्वर को जिम्मेदार समझते हैं और मूर्खतावश उसे कोसने लगते हैं। सभी पापों का मूल अज्ञान है। इसलिए प्यारे, तुम्हें दिव्य औषध की घूँट की बहुत अधिक आवश्यकता है।

इस दिव्य औषध की तलाश करने के लिए ही गौतम बुद्ध ने अपने माता-पिता, अपनी प्रिय पत्नी और बच्चे तथा अपनी सारी राजसी सुख-सुविधाओं को तिलांजलि दे दी थी। इस औषध में पीड़ा समाप्त करने वाली महान् गुण-शक्ति है। सभी रोगों के लिए यह रामबाण है। सरल शब्दों में कहें तो यह औषध है– 'ईश्वर पर भरोसा रखो और सत्कर्म करते जाओ।'

एक व्यापारी बाजार से घर लौट रहा था। उसके पास बहुत-सा धन था। मार्ग में वह एक जंगल से होकर गुजरा। अचानक एकदम तेज वर्षा होने लगी। उसे भारी मुसीबत का सामना करना पड़ा। सारी रात उसे गीले कपड़ों में, ठण्ढ से ठिठुरते हुए, जंगल में बितानी पड़ी। वह बड़बड़ाने लगा और ईश्वर को दोष देने लगा। सबेरा हुआ तो एक डाकू की नजर उस व्यापारी पर पड़ी और उसने उसे गोली मारकर सारा धन छीन लेने का प्रयत्न किया। लेकिन बारूद गीली हो गयी थी, इसलिए गोली नहीं चली। व्यापारी बचकर भाग गया। जरा सोचो, उस व्यापारी को मौत के मुँह से किसने बचाया?

सफलता की अपेक्षा विफलता उत्तम सीख देती है। इसलिए ईश्वर के प्रति पूरी-पूरी श्रद्धा रखा करो। पूरे मन से अपना कर्तव्य करो, बाकी सब कुछ, सफलता या असफलता ईश्वर पर छोड़ दो। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं, 'कर्म करना ही तुम्हारा कर्तव्य है, कर्म का फल तुम्हारा हेतु नहीं है।'

एक और प्रसंग द्वारा इस बात को स्पष्ट कर दूँ। एक बार अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों किसी धनी आदमी से मिलने गये। वह बड़ा घमण्डी था। उसने उनके स्वागत और भोजन की बिल्कुल परवाह नहीं की। उनके साथ सद्व्यवहार तक नहीं किया। श्रीकृष्ण ने जाते समय उसे आशीर्वाद दिया और कहा, 'तुम्हें बहुत धन-दौलत मिले।'

इसके बाद वे दोनों एक दूसरे व्यक्ति से मिलने गये। वह वृद्ध, निर्धन, किन्तु सज्जन व्यक्ति था। उसके पास एक गाय थी। उसने श्रीकृष्ण तथा अर्जुन का सत्कार किया और दोनों को पीने के लिए दूध दिया। श्रीकृष्ण ने जाते समय कहा, 'तुम्हारी गाय मर जाये।'

अर्जुन को बड़ा आश्चर्य हुआ, बोला, 'भगवान! आपका स्वभाव मैं समझ नहीं पाया। आपने उस धनी आदमी को तो वरदान दिया, जिसने आपका अपमान किया और जिस गरीब ने आपका सत्कार किया, उसे शाप दिया।'

भगवान ने उत्तर दिया, 'धनी आदमी अपनी सम्पत्ति की बदौलत बड़े-बड़े पाप करेगा और सीधे नरक में जायेगा। यह गरीब अपनी गाय की ममता से छूट जायेगा और शीघ्र मेरे पास आयेगा।' तब अर्जुन ने कहा, 'प्रभु, आप बड़े रहस्यमय हैं। अब मैं आपका वास्तविक स्वभाव समझा।'

ईश्वर जानता है कि हमारा भला किस बात में है। ईश्वर वही करता है जो अन्ततः हमारे लिए कल्याणकारी सिद्ध हो। उसके विधान को सरलता से नहीं समझा जा सकता। धैर्य और बहादुरी के साथ सभी कठिनाइयों का सामना करो और जीवन-संग्राम में जूझो। कठिनाइयाँ और विपत्तियाँ इसीलिए आती हैं कि ईश्वर के प्रति तुम्हारी श्रद्धा प्रगाढ़ हो, तुम्हारी संकल्प-शक्ति दृढ़ हो, सहन-शक्ति में वृद्धि हो तथा तुम्हारा चित्त अधिकाधिक ईश्वर की ओर मुड़े।

दुःख बहुत बड़ा शिक्षक है। कुन्ती ने भगवान से प्रार्थना की थी, 'हे कृष्ण, मुझे सदा विपत्तियाँ ही देते रहो जिससे मैं आपका स्मरण निरन्तर करती रह सकूँ।' इसलिए यह बात अच्छी तरह समझ लो कि ईश्वर सब कुछ हमारे कल्याण के लिए ही करता है। छोटी-छोटी बातों से खीज न जाओ। बड़ी-बड़ी सफलताओं से फूल न जाओ। सदा शान्त और सन्तुलित रहो। सब कुछ ईश्वर की इच्छा से होता है। कष्ट, दुःख, कठिनाई और असफलता सब ईश्वर के उपहार हैं। इनसे हमारा चित्त शुद्ध होता है। इसलिए हमें अपने को ईश्वर की इच्छा पर छोड़ देना चाहिए। ईश्वर के चरणों में अपने को पूर्णतया समर्पित कर दो और कोई भी दुःख या कठिनाई आये तो झींको नहीं। समझदार लोग अपने भले या बुरे, दोनों को ही बड़ी शान्ति के साथ स्वीकार करते हैं। वे न तो भले का खुशी से स्वागत करते हैं और न बुरे की निन्दा करते हैं। इसी प्रकार हमें जो भी प्राप्त हो, भला या बुरा, उसे ईश्वरीय विधान समझ कर समान भाव से स्वीकार करना चाहिए। हमें अपने विषय में यह समझना चाहिए कि हम मात्र उपकरण हैं, जिससे ईश्वर अपनी दिव्य इच्छा के अनुसार काम लेता है।

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि जब हम कठोर परिश्रम करते हैं, वह कुछ-न-कुछ लाभ प्राप्त करने के लिए ही करते हैं, तब अपनी इच्छा और कठिन परिश्रम के अनुसार हम कर्म-फल प्राप्त करने की आशा क्यों नहीं करें? इसे एक उदाहरण के द्वारा समझाते हैं। मान लो, तुम अपनी बहन के विवाह में जाना चाहते हो और उसके लिए सप्ताह-भर के अवकाश के लिए अर्जी देते हो। अब इस अवकाश की स्वीकृति देना पूर्णतया तुम्हारे अधिकारी पर निर्भर है। मान लो, वे कहते हैं, 'इस समय मेरे पास कार्य करने वाले लोग कम हैं, इसलिए तुम्हारा अवकाश स्वीकृत

नहीं कर सकूँगा।' तब तुम क्या करोगे? क्या अधिकारी को कोसोगे या नौकरी छोड़ दोगे? तुम्हें इस बात का दु:ख जरूर होगा कि तुम्हें छुट्टी नहीं मिल पायी, लेकिन क्या तुम अधिकारी पर दबाव डाल कर छुट्टी पाने के अपने अधिकार पर जोर दे सकते हो?

नौकरी छोड़ने से अपना ही नुकसान करोगे और अधिकारी की निन्दा करने से भी कोई लाभ नहीं होगा। यदि अपने अधिकार पर जोर देने लगो, तो शायद अपने अधिकारी को असन्तुष्ट ही करोगे। ऐसे में तुम्हारे लिए यही उत्तम है कि तुम अपने को अपने अधिकारी की इच्छा पर छोड़ दो। तुम्हारी इच्छा के अनुसार अवकाश मिला तो बहुत अच्छा, लेकिन अपनी सफलता के लिए अधिक हर्षित होने की जरूरत नहीं है। यदि अवकाश नहीं मिला तो चिन्ता करने की भी आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार कर्त्तव्य का पालन ईश्वर में पूरी श्रद्धा तथा उसके प्रति भक्ति के साथ करना चाहिए। कर्त्तव्य के लिए कर्त्तव्य करो। उसका फल ईश्वर को अर्पित कर दो।

हमारा मन जो उद्विग्न या उत्तेजित होता है, वह कर्म के कारण नहीं, बल्कि उसका फल प्राप्त करने की इच्छा के कारण होता है। यही हमारे मन को अशान्त बनाता है। इच्छा की पूर्ति न हो तो हम असन्तुष्ट होते हैं। यदि हम फल प्राप्त करने की कामना छोड़ दें तो सफलता या विफलता हमारे मन को जरा भी प्रभावित नहीं कर सकती। यही जीवनमुक्ति का रहस्य है।

ध्यान और स्वास्थ्य

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

ध्यान में गहन शारीरिक और मानसिक विश्राम मिलता है, जिसकी अनुभूति हममें से कुछ लोगों को निद्रावस्था में भी होती है। अत: ध्यान द्वारा अनेक बीमारियाँ दूर की जा सकती हैं, अपूर्व स्वास्थ्य-लाभ किया जा सकता है।

इस पर विचार-विमर्श करने के पूर्व हम शरीर और मन के अटूट पारस्परिक सम्बन्ध को समझ लें। युगों से यह माना जा रहा था कि शारीरिक व्याधि का मन से कोई वास्ता नहीं और मानसिक व्याधि का शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं है। हाल ही में दोनों के बीच के घनिष्ठ आन्तरिक सम्बन्ध को मान्यता दी गयी है। वास्तव में ये दोनों मिलकर एक ही इकाई हैं, जैसे, मानसिक विश्राम से शरीर की थकान कम होती है और शारीरिक विश्राम से मन की। यह तो आप लोगों ने भी स्वयं अनुभव किया होगा। अत: यह स्पष्ट है कि किसी भी रोग का कारण निश्चित रूप से मन और शरीर, दोनों ही से सम्बन्धित है और दोनों के संतुलित इलाज से ही रोग-निवारण सम्भव है।

रोग-निवारण के लिए दवाओं द्वारा किए जाने वाले इलाज की अपेक्षा ध्यान अधिक समग्र एवं सम्पूर्ण विधि है। दवाओं से जो उपचार होते हैं उनसे किसी अंग विशेष के रोग ही दूर हो सकते हैं तथा शरीर के दूसरे अंगों पर उनका दुष्प्रभाव भी पड़ सकता है, जिसके कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। पर ध्यान की परिधि में

सम्पूर्ण व्यक्तित्व को लिया जाता है। ध्यान द्वारा उपचार की डोर रोगी के हाथ में आ जाती है। रुग्ण व्यक्ति में ध्यान द्वारा वह क्षमता आ जाती है जिससे वह रोग से लड़ सकने में समर्थ हो जाता है। यह उपचार मन और शरीर से एक साथ सम्बन्ध रखता है। ध्यान द्वारा अपने मन को रोगों को दूर करने का प्रशिक्षण दिया जा सकता है। लेकिन सबसे पहले तो ध्यान की विधि जान कर मन और शरीर पर नियंत्रण रखने की कला सीखनी होगी। जब व्यक्ति अपने मन तथा शरीर की आन्तरिक गतिविधियों के प्रति सजग हो जाता है, तब वह अपनी ऊर्जा तथा शक्ति को आवश्यकतानुसार दिशा प्रदान कर सकता है। रोगग्रस्त व्यक्ति ध्यान के अभ्यास से अपनी आन्तरिक ऊर्जा को बीमार अंग की ओर दिशान्तरित करने की कला सीख जाएगा।

ध्यान के शारीरिक प्रभाव

ध्यान शारीरिक क्रिया-कलापों के नियंत्रण का सबसे सशक्त उपाय है, साथ ही मानसिक क्रियाओं तथा घटनाओं के कारण हो रही शारीरिक प्रतिक्रियाओं के नियंत्रण का भी यह प्रभावी माध्यम है। ध्यानावस्था में शरीर पर होने वाला सबसे गहरा परिवर्तन है—चयापचय की गति का मन्द पड़ जाना, क्योंकि ऑक्सीजन के उपयोग तथा आवश्यकता एवं कार्बन-डाइऑक्साइड की उत्पत्ति, दोनों में ही कमी आ जाती है। प्रयोगों से पता लगा है कि ऑक्सीजन व्यय में 20% तक कमी आ जाती है, क्योंकि श्वसन की गति धीमी पड़ जाती है। चयापचय की गति के मन्द पड़ जाने का कारण स्वचालित स्नायु संस्थान पर ध्यान के अभ्यास द्वारा प्राप्त नियंत्रण है।

रक्तचाप पर ध्यान का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यह ध्यानावधि में और उसके बाद भी सामान्य से बहुत नीचे गिर जाता है। इसलिये उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों के लिये तो ध्यान विशेष लाभदायक उपचार है। हृदय गति भी अधिक स्वस्थ ढंग से चलने लगती है। रक्त संस्थान से सम्बन्धित एक और रोचक तथ्य यह है कि ध्यान के अभ्यास से रक्त प्रवाह भी बढ़ जाता है। इसे समझने के लिये हम स्वचालित स्नायु संस्थान की ओर पुन: देखें, विशेष रूप से अनुकम्पी स्नायुजाल। स्नायुओं के ये जाल रक्तवाही नाड़ियों को संकुचित करते हैं, जिससे रक्त का संचार प्रभावित होता है। जितना अधिक संकुचन होगा, रक्त प्रवाह उतना ही कम होगा। ध्यान की अवस्था में अनुकम्पी स्नायु संस्थान की गति धीमी हो जाती है, फलत: रक्तवाही नाड़ियों का संकुचन कम हो जाता है तथा रक्त संचार की गति बढ़ जाती है।

साधक के लिए यह बढ़ा हुआ रक्त संचार अत्यन्त लाभदायक है। उदाहरणार्थ, लैक्टेट के उत्पादन को ही लें। लैक्टेट का उत्पादन मांसपेशियों में ऑक्सीजन की कमी के कारण होता है। मांसपेशियाँ जितनी अधिक क्रियाशील होती हैं, इसका स्रवण-संचयन उतना ही अधिक होता है, क्योंकि ऑक्सीजन से प्राप्त शक्ति से

अधिक शक्ति मांसपेशियाँ खर्च कर देती हैं। लैक्टेट का उत्पादन ऊर्जा की इस कमी को पूरा करने के लिए होता है।

विश्राम के समय लैक्टेट अन्य तत्त्वों में विखण्डित हो जाता है, क्योंकि मांसपेशियों को पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन प्राप्त होने लगती है। ध्यान में बढ़ते हुए रक्त संचार के फलस्वरूप मांसपेशियों को अधिक ऑक्सीजन मिलनी निश्चित है, अत: लैक्टेट का शीघ्रता से क्षय होने लगता है। इस बिन्दु पर ध्यान देना चाहिए कि ध्यान में वास्तव में कम ऑक्सीजन ग्रहण की जाती है, पर मांसपेशियों को उपलब्ध ऑक्सीजन का वितरण अधिक होता है, जो लैक्टेट को तोड़ देता है। साथ ही, उपचयन की क्रिया में कोषाणु कम ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं। लैक्टेट का उत्पादन अनुकम्पी स्नायु-संस्थान द्वारा उद्दीप्त होता है। ध्यान में इस अनुकम्पी स्नायु संस्थान के निष्क्रिय हो जाने से लैक्टेट की उत्पत्ति भी कम हो जाती है।

लैक्टेट के उत्पादन के विषय को इतना महत्त्व इसलिए दिया जा रहा है कि औषध विज्ञान के शोधों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि चिन्ता, मानसिक रोग, तनाव आदि से पीड़ित लोगों में लैक्टेट की मात्रा, शांत मनोवस्था वाले लोगों की अपेक्षा ज्यादा पायी जाती है। वैज्ञानिक शोध तथा अध्ययन के दौरान जिस व्यक्ति के शरीर में लैक्टेट बाहर से डाला गया, वह चिन्ताग्रस्त हो उठा। साथ ही नियमित रूप से ध्यान करने वाले तथा सामान्य रक्तचाप वाले व्यक्तियों की अपेक्षा उच्च रक्तचाप वाले व्यक्ति में लैक्टेट की मात्रा ज्यादा रहती है।

लैक्टेट की मात्रा कम करने का सर्वोत्तम उपाय है, ध्यान। इससे रक्तचाप स्वत: सामान्य हो जायेगा और सभी प्रकार की चिन्तायें कम हो जायेंगी। चिन्ता स्वयं अनेक शारीरिक एवं मानसिक रोगों का मूल कारण है। अत: रोग मुक्ति के अनेक प्रचलित उपायों में ध्यान सर्वोत्तम उपाय है। इससे रोगों का जड़ से निदान होता है, मात्र ऊपरी लक्षणों का नहीं।

इन शारीरिक परिवर्तनों के साथ विश्राम की अन्य विधियों, जैसे, निद्रा और सम्मोहन में क्या साम्य है? कहना चाहिये कि कोई साम्य नहीं, क्योंकि सम्मोहन में चयापचय की मात्रा में बहुत कम अथवा कोई अन्तर नहीं आता। निद्रा में कुछ घंटों के बाद शारीरिक परिवर्तन प्रारम्भ होते हैं। निद्रावस्था में कार्बन-डाइऑक्साइड का विशेष संचयन रक्त में पाया जाता है, जबकि ध्यानावस्था में रक्त में ऑक्सीजन तथा कार्बन-डाइऑक्साइड का अनुपात (मात्रा नहीं) निरन्तर एक समान बना रहता है।

संघर्ष अथवा पलायन के हेतु शरीर का रक्षा यंत्र

शरीर में संघर्ष अथवा पलायनवादी रक्षा प्रणाली का भार अनुकम्पी स्नायु संस्थान और एड्रीनल ग्रन्थियों पर है। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। तनाव, भय, विपत्ति आदि की स्थिति में एड्रीनल ग्रन्थि एक रस स्रावित करती है, जिसे एड्रीनलिन

कहते हैं। यह रस शरीर को संघर्ष या पलायन के लिये तैयार करता है। यह हृदय गति, श्वसन गति एवं दृष्टि, श्रवण आदि इन्द्रियों की ग्रहणशीलता को बढ़ाकर तथा पाचन क्रिया को रोककर सारी शक्ति एक ओर लगा देता है, ताकि व्यक्ति इस शक्ति से अचानक आए हुए खतरे का सामना कर सके। यह व्यवस्था थोड़े समय ठहरने वाली विपत्तियों के लिए है। जो विपत्तियाँ देर तक ठहरने वाली हैं, उनका सामना करने के लिये अनुकम्पी स्नायु संस्थान ही क्रियाशील रहता है और वह शरीर को अधिकाधिक गतिशील बनाये रखता है। धीरे-धीरे जब संकट समाप्त हो जाता है तब शरीर की क्रियायें पुन: स्वाभाविक ढंग से चलने लगती हैं।

आधुनिक जीवन-पद्धति इतनी प्रतिद्वन्द्विता और कठिनाइयों से भरी हुई है कि अधिकतर लोगों को सदा ही संघर्ष अथवा पलायन के लिये तनावयुक्त स्थिति में रहना पड़ता है। इसका कारण अपने अधिकारी का डर, मित्रों तथा पड़ोसियों के समक्ष सम्मान खोने, किराये एवं खर्चों के सभी बिल न चुका पाने इत्यादि का डर हो सकता है। इस स्थिति में व्यक्ति सदा तनावयुक्त तथा बदलती हुई मन:स्थिति में रहता है। निरन्तर असंतोष और क्षोभ की ऐसी स्थिति में रहते हुए व्यक्ति अपनी रोग-प्रतिरोधक क्षमता भी खो बैठता है।

बहुत-से लोग सोचते हैं कि वे अपने जीवन में अधिकतर विश्रान्त रहते हैं। कुछ लोगों के लिए यह बात सत्य हो सकती है, परन्तु वैज्ञानिक परीक्षणों का निष्कर्ष बतलाता है कि अधिकतर लोग निरन्तर तनावयुक्त रहते हैं, यद्यपि वे इसके प्रति सजग नहीं होते। विभिन्न तनावपूर्ण परिस्थितियों के प्रतिक्रिया स्वरूप, चाहे वे तृणवत् तुच्छ ही क्यों न हों, वे मांसपेशियों को तानने, आँखें झपकाने या नाखून कुतरने लगते हैं। ये क्रियाएँ आदतन इतने सहज तथा स्वाभाविक ढंग से होती हैं कि करने वाले को भी यह जानकारी नहीं रहती कि वह ऐसी प्रतिक्रियाएँ कर रहा है।

आदतन होने वाली ये नगण्य सी प्रतिक्रियायें मनोकायिक व्याधियों की पूर्व-सूचना देती हैं। जब व्यक्ति जाने-अनजाने इन तनावों को अभिव्यक्त करता है, तो वह वास्तव में अपने को संघर्ष अथवा पलायन के लिए तैयार कर रहा होता है। यह प्रतिक्रिया अनुकम्पी स्नायु संस्थान तथा एड्रीनल ग्रन्थियों के द्वारा होती है। इन क्रियाओं का बाह्य स्वरूप छोटा और नगण्य होता है, परन्तु यदि जाँचा जाय तो पता लगेगा कि ऐसे व्यक्तियों की हृदयगति, श्वसन क्रिया आदि में आन्तरिक रूप से परिवर्तन हो रहा होता है। एड्रीनल ग्रन्थि एवं अनुकम्पी स्नायु संस्थान की लम्बे समय तक उत्तेजना धीरे-धीरे उन्हें उच्च रक्तचाप, अल्सर, मधुमेह, थ्रौमबोसिस के साथ-साथ अनेक मानसिक रोगों तथा पीठ-दर्द, त्वचा सम्बन्धी समस्याओं, पेशीय ऐंठन तथा इस प्रकार के बहुत-से दूसरे रोगों की ओर ले जा रही होती है।

इन्हें रोकने और इनसे मुक्ति पाने का एकमात्र निश्चित उपाय है, प्रतिदिन सम्पूर्ण शरीर व मन को पूरी तरह नियत विश्राम देना। निद्रा निश्चय ही विश्राम की एक

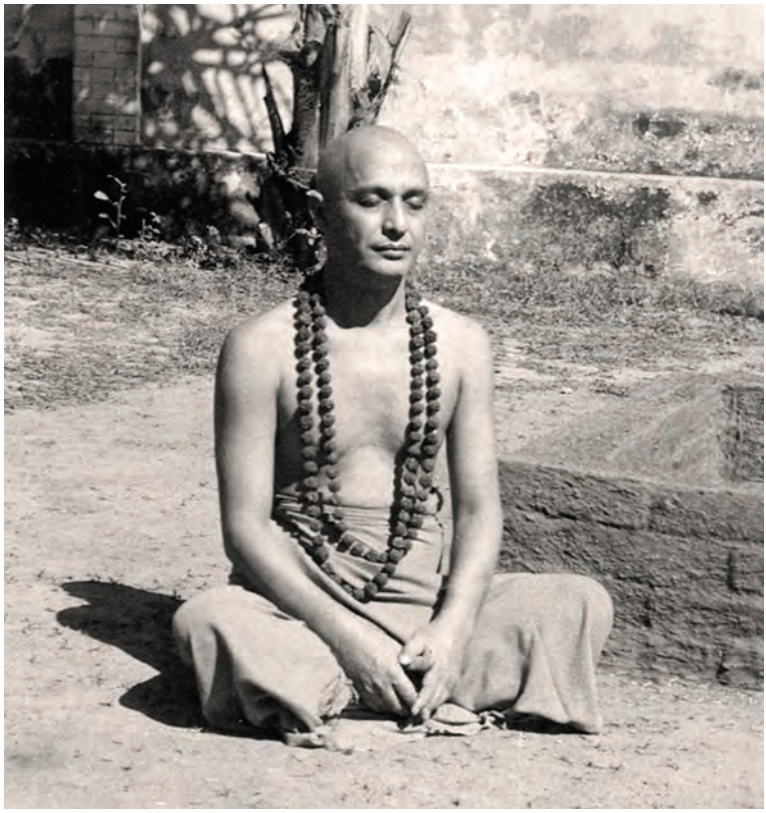

सामान्य स्थिति है। पर कुछ लोग इतने तनावपूर्ण होते हैं कि नींद में भी तनावरहित नहीं हो पाते। वे लोग नींद में भी अपनी दैनिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयास कर रहे होते हैं। एड्रीनल तथा अनुकम्पी स्नायु संस्थान के अतिशय उपयोग से शरीर में जो क्षति होती है उसकी पूर्ति तथा पुनर्संतुलन की स्थापना निद्रा पर्याप्त रूप से नहीं कर पाती। गहन शिथिलीकरण के बाद ही क्षतिपूर्ति होती है और शरीर की आंतरिक क्रियाएँ पुन: सामान्य हो पाती हैं। ध्यान में यह संभव है। एक अर्थ में ध्यान एड्रीनल ग्रंथि तथा अनुकम्पी स्नायु संस्थान के प्रभावों को संतुलित करता है। आधुनिक जीवन के लिए यह रामबाण है। यह मनुष्य के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का सर्वोत्तम साधन है।

हम केवल शिथिलीकरण की नहीं, अपने वातावरण के प्रति अपनी प्रतिक्रिया बदलने की भी कला सीखें। वातावरण से भीति नहीं, प्रीति रखकर ही हम आनन्द पा सकते हैं। शरीर एवं मन की व्यवस्था में हमें नई आदतें लागू करनी होंगी, ताकि प्रत्येक संभावित परिस्थिति में रक्त में एड्रीनलीन का स्राव न हो, हमारी

प्रतिक्रिया भिन्न हो, हम शिथिल तथा विश्रान्त हो सकें, प्रसन्न रहें और चेतना के स्तर को ऊँचा उठा सकें।

मन का परिवर्तन कितना महत्त्वपूर्ण है, इसे समझाने के लिए मस्तिष्क की उस क्रियाविधि का संक्षिप्त वर्णन देता हूँ जो हमारी तनावयुक्त या विश्रान्त स्थिति से सम्बन्धित है। मस्तिष्क का एक मुख्य भाग लिम्बिक संस्थान है, जिसका मुख्य कार्य है ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त संवादों को मस्तिष्क में संचित पूर्व अनुभवों से मिलाना। दूसरे शब्दों में लिम्बिक संस्थान इन्द्रियों से प्राप्त नए संवादों की तुलना हमारे मस्तिष्क में संचित सभी अनुभवों एवं स्मृतियों से करता है और इन पूर्व अनुभवों के आधार पर उनका विश्लेषण करता है।

यदि अनुभव नये हैं और मस्तिष्क की धारणाओं तथा स्मृतियों से मेल नहीं खाते तो लिम्बिक संस्थान उनके प्रति हमारी भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को गहन बना देता है। इसलिए जब हमारे साथ कुछ अनपेक्षित घटित होता है या हमें अपने पूर्व अनुभवों से भिन्न कोई अनुभव होता है, तो लिम्बिक संस्थान तुरंत क्रोध, तनाव आदि भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को जन्म देता है। फलस्वरूप एड्रीनल ग्रन्थि से रक्त में एड्रीनलिन का स्राव अधिक होता है और हममें क्रोध या विपत्ति संरक्षण सूचक प्रतिक्रियाएँ होने लगती हैं, जिससे सारे शरीर में तनाव व्याप्त हो जाता है, रक्त प्रवाह, हृदय की गति और श्वसन क्रिया तीव्र हो जाती है। आधुनिक युग के अधिकतर लोग अपना जीवन ऐसे ही व्यतीत करते हैं और लम्बे समय तक बना रहने वाला यह तनाव उन्हें अनेक प्रकार के रोगों का शिकार बना देता है।

मस्तिष्क के इसी संस्थान का एक हिस्सा, जिसे सेप्टल क्षेत्र कहते हैं, दूसरी दिशा में कार्य करता है। यह हमारी भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को घटा कर तनाव कम कर देता है। ऐसे में मन और शरीर को शिथिलता की अनुभूति होती है। ध्यान द्वारा जीवनभर हम लिम्बिक संस्थान के सेप्टल क्षेत्र के हाथ में बागडोर थमाये रख सकते हैं। इन अवस्थाओं में हम रोग-मुक्त तथा निश्चिन्तता की स्थिति में रहते हैं, आलस्य में नहीं। हम अधिक दक्षता से कार्य कर सकते हैं।

जो निश्चिन्त, आनन्दमय जीवन की आकांक्षा रखते हैं, उन्हें दूसरे का नहीं, अपना मन बदलना है। अपने मन तथा बाहरी दुनिया के प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं को बदलकर ही स्वस्थ तथा सुख-शान्ति से परिपूर्ण जीवन की प्राप्ति होती है। मन को बदले बिना संसार में सुख खोजना मृगतृष्णा है। यदि रोगमुक्त स्वस्थ जीवन चाहिये तो आप ध्यान करें और अपने मन को एक नई दिशा दें। कष्ट से मुक्ति पाने के लिए अपनी उन मानसिक धारणाओं को बदलें जो आपके बचपन के समय गलती से आपके मस्तिष्क में भर दी गईं थीं, क्योंकि वे ही आपकी अप्रसन्नता का मूल कारण हैं।

–'ध्यान– तंत्र के आलोक में' से उद्धृत

प्राण और चित्त शक्ति का समायोजन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हमलोग अपने जीवन में अनेक तरह की सामाजिक, पारिवारिक, शारीरिक और मानसिक समस्याओं का सामना करते हैं। इन समस्याओं का समाधान हमलोग कैसे प्राप्त कर सकते हैं? इसका उत्तर योग के पास है।

प्राण और चित्त शक्ति

योग में दो ऊर्जाओं की चर्चा होती है। एक ऊर्जा को हमलोग कहते हैं प्राणशक्ति, जिसका सम्बन्ध रहता है शरीर के साथ। यह स्थूल ऊर्जा है और इसका जो सूक्ष्म रूप है वह मन को संचालित करती है जिसे हमलोग कहते है चित्तशक्ति। इन्हीं दो को योग में सूर्य और चन्द्र की शक्ति या पिंगला और इड़ा कहा जाता है। इस सिद्धांत को अच्छे से समझ लीजिये क्योंकि समाधान यहीं से होने वाला है।

ये दोनों ऊर्जाएँ, शारीरिक और मानसिक, हमारे सम्पूर्ण जीवन का संचालन करती हैं। लेकिन आज की परिस्थिति कुछ ऐसी है कि प्राणशक्ति हर व्यक्ति में दुर्बल है और चित्तशक्ति हर व्यक्ति में चंचल है। प्राणशक्ति दुर्बल क्यों है? इसलिए कि जो आहार हम लेते हैं या जिस विचार से हम घिरे रहते हैं या जिस व्यवहार को हम देखते हैं, ये सब हमारे शरीर की ऊर्जा को कम करते हैं। आज के आहार में वे पोषक तत्त्व नहीं हैं जो पचास साल पहले रहते थे। आज कृत्रिम

आहार अधिक हो रहा है, खबर मिलती है कि हर चीज में मिलावट हो रही है। जब लोगों का इस प्रकार का आहार हो रहा है जो शुद्ध नहीं है तो उससे शरीर को कौन-सी ऊर्जा मिलेगी? आखिर अन्न ही प्राण है, जैसा कि तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है, *प्राणो वा अन्नम्*।

कुछ साल पहले टाईम पत्रिका में एक लेख छपा था। वैज्ञानिकों ने पहाड़ों से, समुद्रों के बीच जाकर, शहरों और गाँवों में वायु का सैम्पल लिया। उन्हें कहीं पर भी शुद्ध वायु दिखलाई नहीं दी, न हिमालय में, न प्रशान्त महासागर के बीच में। सब जगह प्रदूषण है, और उसी प्रदूषित वायु को हम लेते और छोड़ते हैं। हमलोगों के फेफड़े दुर्बल है, हमें श्वसन रोग हैं, हृदय दुर्बल हैं, चौदह साल के बच्चों को अब मधुमेह होने लगा है। जब बच्चे जन्म लेते हैं तो उनको जन्म से ही हृदय रोग होता है, हृदय में छेद होते हैं। यह सब प्रदूषण के कारण है क्योंकि हम शुद्ध तत्त्व ग्रहण नहीं कर रहे हैं, शुद्ध प्राण प्राप्त नहीं कर रहे हैं। पानी के कितने स्तर प्रदूषित हो चुके हैं। आप अपने घर के ही पम्प को देखिये, आपको कितने नीचे जाना पड़ता है? दो सौ फुट से भी ज्यादा। अस्सी फुट में काम नहीं चलता है, वहाँ प्रदूषण हो गया है, अब लोगों को दो सौ फुट जाना पड़ता है। उस स्तर में भी अब प्रदूषण हो रहा है। बिहार में कितने स्थानों के जल में आरसेनिक हो गया है, जिससे कैंसर होता है। हम दो साल पहले पंजाब गये थे, वहाँ पर योग सम्मेलन हुआ था। वहाँ प्राय: हर घर में किसी-न-किसी व्यक्ति को कैंसर है, क्योंकि धरती इतनी प्रदूषित है, जल इतना प्रदूषित है। कुछ भी खायें-पीयें तो कैंसर होने की संभावना रहती है। यह एक मुख्य कारण है जिसकी वजह से प्राण दुर्बल हो रहे हैं और शरीर की क्षमता कम हो रही है। थोड़ा चलें थकान लगती है, कुछ करें थकान हो जाती है, विश्राम करने की इच्छा होती है। माँसपेशियों में अब वह बल नहीं रहा जो तीस-चालीस साल पहले लोगों में था कि एक अलमारी को अपने हाथों से उठा दें। अब तो अपना गिलास भी नहीं उठा पाते हैं। गिलास उठाते हैं तो हाथ थरथराता है, यह प्राणों की कमी है।

उसी प्रकार से अब स्थिति देखो चित्तशक्ति की। अगर चित्तशक्ति में संतुलन रहे तो मन शान्त रहता है। लेकिन चित्तशक्ति में अब चंचलता है, संतुलन नहीं। हर व्यक्ति का दिमाग हजार किलोमीटर की रफ्तार से घूमता रहता है, और विशेषकर आधुनिक बच्चों का। मैं मुंगेर के बच्चों की बात नहीं कर रहा हूँ, ये संस्कारी बच्चे हैं, लेकिन दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता या बंगलोर जैसे बड़े शहरों के बच्चों का चित्त इतना चंचल है कि न तो उनके अभिभावक, न शिक्षक, न ही समाज उनको सम्भाल पाता है। बच्चों के चित्त में जो चंचलता है वह आज उनके पूरे जीवन को, पूरे व्यवहार को प्रभावित कर रही है। रात के ग्यारह-बारह बजे तक वे लोग अपने मोबाइल फोन पर फिल्म देखते हैं, फेसबुक पर बात करते हैं। यह सब मानसिक

चंचलता का कारण बना है। आपको मालूम है एक सप्ताह पहले विश्व मनोवैज्ञानिक संघ ने सेल्फी को मनोरोग घोषित किया है! जो लोग ज्यादा सेल्फी लेते रहते हैं उन्हें मनोचिकित्सक के पास जाना पड़ेगा। उसमें भी दो श्रेणियाँ विभाजित की गई हैं, एक बॉर्डर लाईन और दूसरा क्रॉनिक मरीज। बॉर्डर लाईन मरीज वह है जो फोटो लेता है पर सोशल मीडिया पर अपलोड नहीं करता, और क्रॉनिक मरीज वह है जो अपना फोटो ले और झट से सोशल मीडिया पर अपलोड करे! आदमी अपनी ही सूरत को देखकर सम्मोहित हो जाता है, यह मनोरोग नहीं तो क्या है? इसलिए विश्व मनोवैज्ञानिक संघ ने इसे एक मनोरोग के रूप में घोषित किया है, और अब इसके उपचार पर भी काम शुरू हो गया है।

आज के दौर में छोटे बच्चे मोबाइल से दिनभर खेलते रहते हैं और वही उनके लिये यथार्थ हो जाता है। जब मोबाइल उनके हाथ से ले लो तब उन्हें समझ में नहीं आता है कि हम किससे बात करें, क्या कहें, कैसे खेलें। चार आदमी एक साथ होटल जाते हैं भोजन करने, पर कोई किसी से बात नहीं करता है। सब अपना मोबाइल देखते रहते हैं। आजकल कोई अखबार नहीं पढ़ता है, सब मोबाइल पर खबर पढ़ लेते हैं। इसको कहते हैं मोबाइल रोग। आज जिसे देखो उसे यह रोग हो रहा है और यह मोबाइल रोग मन की शान्ति को भंग करके आन्तरिक चंचलता को बढ़ावा देता है। इसी वजह से आज हर व्यक्ति चंचल है। प्रवचनकर्ता भी अपने बगल में मोबाइल लेकर बैठते हैं कि कहीं मेरे बेटे या बेटी का फोन आ जाए तो मैं अपना प्रवचन रोककर एक बार बात कर लूँ। ऐसा हमने वास्तव में होते देखा

है। अगर किसी प्रवचनकर्ता का मोबाइल बजे तो एक मिनट माइक बन्द कर देते हैं, फोन पर कहते हैं कि मैं अभी प्रवचन दे रहा हूँ, फोन रखते हैं और उसके बाद फिर बोलना शुरू करते हैं।

मोबाइल फोन का ऐसा क्या आकर्षण है, समझ में नहीं आता, लेकिन इस आकर्षण में दो चीजें स्पष्ट दिखलाई देती हैं–प्राणों में दुर्बलता और मन में चंचलता। इसी के कारण परिवार में अनुशासनहीनता है, इसी की वजह से परिवार में दुर्बलता है। कोई किसी को सुधारने की हिम्मत नहीं रखता है अब। परिवार में कोई दूसरे को नहीं कह सकता कि तुम गलत कर रहे हो। सब लाचार हो गये हैं।

यौगिक समाधान

योग में इसका एक उपाय है। योग कहता है कि प्राणों की दुर्बलता और मन की चंचलता की जो मूल समस्या है उसे पहले ठीक किया जाए। हर बच्चे को सोते समय योगनिद्रा जरूर कराइये। चाहे वह टेप या सीडी चलाकर हो या स्वयं निर्देश देकर, लेकिन पन्द्रह-बीस मिनट का समय आपको अपने बच्चों को जरूर देना चाहिये। उस पन्द्रह मिनट के समय में जब उनके हाथ में मोबाइल नहीं है और वे शान्तिपूर्वक लेटे हैं आप उनको योग निद्रा कराइये ताकि वे अपने मन में चंचलता नहीं, बल्कि शान्ति का अनुभव करें। योगनिद्रा बहुत आवश्यक है चित्तशक्ति को शान्त करने के लिये। यह केवल रिलैक्सेशन या विश्राम की प्रक्रिया नहीं है जैसा लोग मानते हैं, बल्कि यह व्यवहार को परिवर्तित करने वाली एक क्रिया है। इसका निश्चित रूप से फायदा होता है, यह आश्वासन हम आपको दे सकते हैं क्योंकि बचपन से ही योगनिद्रा का अभ्यास किया है। जो बचपन से योगनिद्रा करेगा वह एक दिन अवश्य ही पद्मभूषित होगा, क्योंकि उसका चित्त शान्त रहेगा।

इसी प्रकार प्राणों को भी शान्त करने के लिये, प्राणों की ऊर्जा को बढ़ाने के लिये प्राणायाम का अभ्यास होना चाहिए। प्राणायाम एक ऐसी चीज है जो हमारी संस्कृति में बचपन से बच्चों को सिखाई जाती रही है। आजकल लोग कहते हैं कि प्राणायाम तो बहुत खतरनाक है, इससे यह होगा, वह होगा, पर सब बकवास है। हमारी परम्परा में तो प्राणायाम बच्चों को आठ साल की अवस्था में बताया जाता है, गायत्री मंत्र के साथ, सूर्यनमस्कार के साथ। यह एक संस्कार के रूप में, एक व्यवस्था के रूप में लाया गया, जिसे हमारे मनीषियों ने एकाग्रता, चित्त की शान्ति, तथा बुद्धि एवं मस्तिष्क की प्रतिभा को बढ़ाने के लिय प्रस्तुत किया। आठ साल की उम्र में यह संस्कार होना जरूरी है। उस संस्कार में क्या सिखलाते थे? कान में गायत्री मंत्र फूंक देते थे, कहते थे याद कर लो इसे– *ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्*। कहते थे कि रोज सबेरे उठकर सूर्य के सामने खड़े होकर हाथ जोड़कर चौबीस बार यह मंत्र बोलो, इसका मन पर बहुत

फायदेमंद असर होता है। साथ ही सूर्यनमस्कार क्रिया सिखलाते थे ताकि हम सूर्य की ऊर्जा को अपने शरीर में ग्रहण कर लें। अंत में प्राणायाम बतलाया जाता था, मस्तिष्क की चंचलता को कम करने के लिये। केवल एक प्राणायाम, नाड़ी शोधन बच्चों को सिखाया जाता था। दाहिनी नासिका से श्वास लो बायीं से छोड़ो। बायीं से लो दाहिनी से छोड़ो, बस इतना ही।

हमारे पूर्वजों ने कहा था कि आठ साल की अवस्था से इन तीन अभ्यासों को आरम्भ करना है। आसन से शरीर स्वस्थ और ऊर्जायुक्त बनता है, शारीरिक दुर्बलता दूर होती है। प्राणायाम से मस्तिष्क संतुलित होता है, मन व्यवस्थित होता है जिससे एकाग्रता, ग्रहणशीलता और समझ बढ़ती है। और गायत्री मंत्र, जो मन के सुषुप्त केन्द्रों को जगा देता है। जब हमारे पूर्वजों ने समाज के लिये यह व्यवस्था रखी, वह लोगों को धार्मिक बनाने के लिये नहीं थी, बल्कि अपने जीवन को व्यवस्थित करने, अपने जीवन को सुन्दर बनाने के लिये थी। आज आप लोग भले ही कह देते हो कि यह तो धार्मिक संस्कार है, पर वास्तव में यह धार्मिक संस्कार नहीं, एक व्यवस्था है। अब चूँकि समाज में इसका प्रचलन करना था इसलिये संस्कार के रूप में कहा गया कि यह होना चाहिये। और यह सभी के लिये होता था, लड़कियों और महिलाओं के लिये भी।

आठ साल की उम्र में फिर उनसे कहा जाता था कि अब तुम शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हो, 'मैं ब्रह्मचारी हूँ' का संकल्प लो। यह संकल्प जब व्यक्ति लेता था तो शिक्षा से जुड़े हुये अनेक सूत्रों को आत्मसात् करता था, जैसे किस प्रकार दूसरों के प्रति हमें सम्मान देना है, किस प्रकार दूसरों के साथ हमारा व्यवहार होना है, किस प्रकार हमें शिक्षा ग्रहण करनी है। तैत्तिरीय उपनिषद् पढ़ लेना, उसके एक-एक श्लोक में, एक-एक सूत्र में बतलाया गया है कि ब्रह्मचारी का नियम क्या है– *आ मायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव।* ये सब अलग-अलग मंत्र बतलाये गये हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्मचारी का अर्थ होता है जो विद्या ग्रहण कर रहा है, और विद्या को ब्रह्म शब्द से जोड़ा गया।

ब्रह्म शब्द बृंह् धातु से बना है। इसका अर्थ होता है वह चेतना जिसका हमेशा विकास होता है। ब्रह्मचारी का मतलब वह व्यक्ति जो शिक्षा का आचरण करे, शिक्षा से जो सीखा है उसका अपने जीवन में निरंतर पालन करे। शिक्षा केवल किताबों से प्राप्त नहीं होती, व्यवहार से भी प्राप्त होती है, और जो शिक्षा व्यवहार से प्राप्त होती है, वही असली शिक्षा है, क्योंकि वह शिक्षा संस्कार बनती है। किताबी शिक्षा कभी संस्कार नहीं बनती है–हिस्टरी जोगरफी बड़ी बेवफा, रात को पढ़ा सबेरे सफा! उससे कौन-सा संस्कार मिला? अकबर के कितने बेटे थे, यह जानकर कुछ फायदा हुआ क्या आपको? उसके बदले में कुछ और बातें सीख लेते जो आज प्रासंगिक हैं।

कहने का तात्पर्य यह कि जो संस्कार हमारे पूर्वजों ने बच्चों के लिये निश्चित किया है वह उनके जीवन के सर्वांगीण विकास के लिये है। वह केवल धार्मिक चिंतन नहीं है, उसके पीछे एक वैज्ञानिक आधार है—मन की चंचलता को शान्त करना और शरीर की ऊर्जा को बढ़ाना। अगर यह हमारे द्वारा संभव हो सके तब तो फिर हमारा समाज संभल जायेगा। इसीलिये मैं आपको आज संकेत दे रहा हूँ कि बच्चों को पन्द्रह-बीस मिनट योगनिद्रा अवश्य कराना, बच्चों से सूर्य नमस्कार जैसे आसनों का अभ्यास कराना, बच्चों से नाड़ीशोधन प्राणायाम और गायत्री मंत्र जरूर करा लेना। आप खुद करो या न करो, वह अलग बात है, लेकिन बच्चे करेंगे तो अगली पीढ़ी बन जायेगी। श्रेय आपको जायेगा जबकि आप ने कुछ किया नहीं। आपने न मंत्र जप किया, न आसन किया, न प्राणायाम किया। आपने कुछ किया नहीं, केवल बच्चों से कराया है, फिर भी श्रेय आपको ही जायेगा कि आपके बच्चे कितने अच्छे निकले हैं!

—31 अगस्त 2017, पादुका दर्शन

प्रसन्न कौन?

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

एक संत प्रसन्न रहता है। एक योगी प्रसन्न रहता है। जिस व्यक्ति का अपने मन पर नियंत्रण है, वह प्रसन्न है। प्रसन्नता मन की शांति से आती है। मानसिक शांति मन की उस अवस्था से आती है जहाँ कोई कामना नहीं होती, मोह नहीं होता, सांसारिक विषयों के विचार नहीं होते। शांति के साम्राज्य में प्रवेश करने से पहले आपको सभी सांसारिक सुखों के विचार को भूल जाना चाहिये।

जब मन में कामना होती है तब मन रजोगुण से भर जाता है। यह मन की एक उत्तेजित अवस्था होती है। मन चंचल और अशांत हो जाता है। जब तक मनोकामना पूरी नहीं हो जाती, मन चंचल रहेगा। जब मनोवांछित वस्तु प्राप्त हो जाती है और उसका आनंद उठा लिया जाता है, तब मन भीतर आत्मा की ओर उन्मुख होता है। वह अपने उच्छृंखल कार्य बंद कर देता है। वह सत्त्व से भर जाता है। एक क्षण के लिये सभी विचार थम जाते हैं। मन भीतर आत्मा में विश्राम करता है। आत्मानंद बुद्धि में प्रतिबिम्बित होता है। जैसे एक कुत्ता सूखी हड्डी को चबाते समय कल्पना करता है कि उसे हड्डी से रिसते हुये रक्त से आनंद मिल रहा है, जबकि वास्तव में रस उसके खुद के तालु से आता है, वैसे ही अज्ञानी व्यक्ति सोचता है कि उसे सांसारिक विषयों से प्रसन्नता मिल रही है।

आनंद की ओर

आध्यात्मिक आनंद सर्वश्रेष्ठ आनंद है। यह मनुष्य की स्वयं की आत्मा का आनंद है। यह वस्तुओं पर निर्भर नहीं होता। यह परमानंद होता है। यह निरंतर, एकरूप और अनंत होता है। केवल संत ही इसका अनुभव करते हैं।

भौतिक सुख भोगों और भावनाओं से आता है, परन्तु आत्मा का आनंद स्वजनित होता है। यह आत्मा का सहज स्वभाव होता है। सुख अस्थायी और क्षणभंगुर होता है, जबकि आंनद चिरस्थायी होता है। सुख में दु:ख का मिश्रण होता है, जबकि आनंद अमिश्रित प्रसन्नता है। सुख स्नायुओं, मन और वस्तुओं पर निर्भर होता है जबकि आनंद आत्मनिर्भर होता है, स्वंयभू होता है। सांसारिक सुखों को प्राप्त करने के लिये प्रयास करना पड़ता है, परन्तु आत्मा के आनंद की अनुभूति के लिये कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। बूंद सागर में मिल जाती है और जीव आनंद के सागर में तैरने लगता है।

जप, सत्संग, दान, मनोनियंत्रण, आत्म-संयम, नि:स्वार्थ सेवा, श्रीमद् भगवद्गीता, उपनिषद् और योग वाशिष्ठ जैसे शास्त्रों के अध्ययन, यम-नियम, प्राणायाम, वैराग्य और त्याग के अभ्यास द्वारा मन को पवित्र करें। तब फिर आपको एक शांत, सुस्पष्ट, सूक्ष्म और एकाग्र मन के रूप में ध्यान के लिये सही उपकरण की प्राप्ति होगी। इस उपकरण की सहायता से प्रात:काल और रात को ध्यान का अभ्यास करें। आपको इन्द्रियों के परे आध्यात्मिक आनंद पर विश्वास होगा। आपको स्वयं इस आध्यात्मिक आनंद का अनुभव करना होगा। क्या आप मिश्री के सुख का वर्णन उस बच्चे से कर सकते हैं जिसने कभी मिश्री का स्वाद नहीं चखा है? नहीं, उस बच्चे को स्वयं मिश्री का स्वाद चखना होगा। इसी तरह आपको उस अवर्णनातीत आनंद की अनुभूति स्वयं करनी होगी।

हँसी – जीवन की मीठी मदिरा

हँसी भीतरी आनंद का बाहरी चिह्न है। हँसी-खुशी ही का नाम जीवन है। जो रोते हैं उनका जीवन व्यर्थ है। जी से हँसो, तुम्हें अच्छा लगेगा। अपने मित्र को हँसाओ, वह अधिक प्रसन्न होगा। शत्रु को हँसाओ, तुमसे कम घृणा करेगा। एक अनजान को हँसाओ, तुम पर भरोसा करेगा। उदास को हँसाओ, उसका दु:ख घटेगा। एक निराश को हँसाओ, उसकी आशा बढ़ेगी। एक बूढ़े को हँसाओ, वह अपने को जवान समझने लगेगा। एक बालक को हँसाओ, उसका अच्छा स्वभाव, अच्छा स्वास्थ्य होगा। वह प्रसन्न और प्यारा बालक बनेगा।

– संकलित

योगनिद्रा और मन

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

हमारा मन समुद्र की तरह है। उसकी भी लम्बाई, चौड़ाई और गहराई है। वह इतना विशाल है कि उसको जानना कठिन हो जाता है। उसकी हर गहराई से अलग-अलग तरंगें निकलती हैं। इसलिए हम लोग योग में सूक्ष्म मन को, जिसे अर्द्धचेतन मन या चित्त कहते हैं, प्रमुखता देते हैं। इसके द्वारा मन की बीमारियों को रोक सकते हैं, विचारों को बदल सकते हैं, भावनाओं को बदल सकते हैं, आदतों को बदल सकते हैं, संस्कारों को भी बदल सकते हैं और नई-नई बातें सीख सकते हैं।

योगनिद्रा एक ऐसी विधि है जिसमें व्यक्ति के अंतर्मन को प्रभावित किया जाता है, बुद्धि को नहीं। तुम लोग जो कुछ पढ़ते हो, वह सब तुम मन और चित्त के माध्यम से नहीं बल्कि बुद्धि के माध्यम से ग्रहण करते हो। इसलिए यह विद्या जीवन में कारगर नहीं होती, इसमें मन और भावना को बदलने का सामर्थ्य नहीं होता। लेकिन योगनिद्रा में व्यक्ति की चेतना सूक्ष्म और ग्रहणशील रहती है। उस समय उसके मन में जो भी भावना और विचार आरोपित किये जाते हैं, वे अंतर्मन में प्रभावशाली ढंग से जम जाते हैं।

मान लो एक लड़का है और वह कुछ नशे का सेवन करता है। उसके पिता, चाचा या मामा उसे दो चाँटे मारते हैं और कहते हैं कि अब तुम नशा कभी नहीं करोगे, किन्तु फिर भी वह छिप-छिप कर नशा करता रहता है। अब तुम सोचो कि उस पर मार का असर क्यों नहीं हुआ? इसलिए कि वह असर उसके अंदर नहीं गया। तुमने केवल उसकी बुद्धि को धमकाया है। बुद्धि थोड़ी देर के लिए प्रभाव को ग्रहण करती है, किन्तु उसके द्वारा दिये गये उपदेश और सुझाव अंत:करण में नहीं उतरते। भले ही इसके लिए तुम लाख कोशिश करो, यह नहीं होगा। यह सच्ची बात है। बुद्धि बहुत तुच्छ साधन है। व्यक्ति में परिवर्तन लाने के लिए तो उसके अंत:करण में प्रवेश करना होगा। किन्तु अंत:करण में कैसे प्रवेश करोगे? वह तो हमेशा पर्दे के पीछे छिपा रहता है। योगनिद्रा उस पर्दे को हटाने की बड़ी ही सरल प्रक्रिया है।

जब हम रात में सोते हैं तो निद्रा की तीन अवस्थायें प्राप्त होती हैं—जागृत, अर्द्धजागृत और स्वप्नावस्था। जब हम सोये हुये व्यक्ति को जगाकर पुन: सो जाने देते हैं तो उस समय कुछ क्षणों के लिए निद्रा की मध्य स्थिति रहती है। उसी समय हम लोग निर्देश देते हैं। ऐसा चार-पाँच दिनों तक करते हैं। फलत: वह व्यक्ति अपने आप परिवर्तित होने लगता है। जब व्यक्ति सोता है तो उस समय उसके मन पर से उसकी बुद्धि का नियंत्रण उठ जाता है, उसका मन अत्यन्त ग्रहणशील हो जाता है। उस समय तुम मन को जो कुछ भी आदेश दोगे, वह उस पर तुरन्त अंकित

हो जायेगा, क्योंकि मन बहुत कोमल और भोला-भाला होता है। उसमें सच्चाई, ईमानदारी और आज्ञाकारिता होती है। इस अतिसंवेदनशील मन को कोई जानता नहीं है। हमलोग योगनिद्रा की अवस्था में सीधे रूप से इस मन के साथ ही बातें करते हैं।

यह विशेषकर उन लोगों के लिए जरूरी है जो अपने जीवन में भटक रहे हैं, जिनको मालूम नहीं है कि क्या करना है, क्या बनना है और क्या पाना है। ऐसे लोगों से मैं कहता हूँ कि तुम योगनिद्रा करो और योगनिद्रा की स्थिति में जब तुम्हारा मन तनावरहित हो जाये, तब सोचो कि तुमको क्या करना है। अपने लक्ष्य को बोलो और अपने हृदय से पूछो तो तुम्हें निश्चित रूप से स्पष्ट और ठीक-ठीक उत्तर मिलेगा। मन सदैव सत्य बोलता है, किन्तु बुद्धि कभी सत्य बोलती है और कभी असत्य। बुद्धि कूटनीतिज्ञ है। दुनिया में किसी भी व्यक्ति के दिल ने आज तक झूठ नहीं बोला है, वह सत्यवादी है। अब योगनिद्रा की अवस्था में अपने दिल से पूछो कि मुझे क्या करना है? मान लो एक महीने तक उत्तर नहीं मिलता है, तो फिर प्रश्न करो। इसी तरह प्रश्न पूछते जाओ कि मुझे क्या करना है। योगनिद्रा में एक-न-एक दिन इसका उत्तर अवश्य ही मिलेगा और वह उत्तर तुम्हारे जीवन का पथ-निर्देशक बन जायेगा, तुम्हारे जीवन का सूत्रधार बनेगा। जब तुम्हें अपने लक्ष्य का पता लग जाये तो संकल्प करो कि मुझे यह बनना या करना है।

मैं तुम्हें स्पष्ट बोलता हूँ कि इस हृदय या अर्द्धचेतन मन में बहुत ग्रहणशीलता है, क्षमता है और इसी शक्ति के बल पर कृष्ण, राम और बुद्ध हुये हैं। महान् व्यक्ति वही है जो अपने हृदय से बातें कर सकता है और मैं जानता हूँ कि तुम भी अपने हृदय से बातें कर सकते हो। लेकिन तुम्हारा हृदय अंत:पुर के पीछे है और वहाँ तुम्हारी आवाज आसानी से नहीं पहुँचती है। अगर चिल्लाओगे तो भी वह नहीं सुनेगा, क्योंकि तुम्हारे और उसके बीच में एक दीवार है। उस दीवार को हटाने के लिए तुम्हें कोई उपाय खोजना होगा और सर्वोत्तम उपाय है योगनिद्रा।

यदि आपके बच्चे की कोई गलत आदत है तो आप क्या करते हैं? दूसरों के सामने उसकी शिकायत करते हैं, आलोचना करते हैं और इससे बच्चे के दिमाग में बहुत नकारात्मक विचार आते हैं। भले ही आप समझते हैं कि बच्चा छोटा है, अभी कुछ नहीं समझता है, किन्तु ऐसी बात नहीं है। बच्चों का मन सुपरफास्ट फिल्म निर्मित करता है। आप इसे जानते नहीं हैं। नौ महीने तक माँ के गर्भ में बच्चा बहुत ही संवेदनशील रहता है। जिस प्रकार रडार दूर-दूर की सूचनाओं और दृश्यों को अंकित कर लेता है, हवाई जहाज के आगमन की पूर्व सूचना दे देता है और बहुत सारी खबरों को स्थायी रूप से अंकित कर लेता है, उसी प्रकार गर्भस्थ शिशु भी हर विचार, भावना और दृश्य को अंकित करता रहता है। बच्चों में इस प्रकार की ग्रहणशीलता सात वर्ष की उम्र तक बनी रहती है और उसके बाद यह शक्ति क्षीण होने लगती है। सात वर्ष के बाद बच्चों को तुम नयी चीजें नहीं सिखला सकते हो,

जबकि हमारे समाज में इसके ठीक विपरीत होता है। माँ-बाप बच्चों को सात वर्ष की उम्र तक नादान समझते हैं और बाद में उसके प्रति सजग होते हैं तथा सब कुछ सोच-समझ कर करते हैं। बच्चों की सात साल की अवस्था तक तो पिता उनके सामने सिगरेट पीता है और इसके बाद सोचता है कि अब बच्चा बड़ा हो गया है, अब इसके सामने सिगरेट नहीं पीनी चाहिये। कितनी बड़ी भूल है यह! मन के स्वरूप का ज्ञान किसी को नहीं है। मन क्या चीज है, इसकी प्रतिक्रियायें कैसी होती हैं, इसका चक्रव्यूह कहाँ शुरू होता है, यह कहाँ चोट खाता है, किसी को कुछ मालूम नहीं है।

गर्भस्थ शिशु में चौथे महीने के बाद चेतना का अवतरण होता है, नौ महीने के बाद समझने की शक्ति, विवेक और बुद्धि का अवतरण होता है। उस समय बच्चा कमरे की चीजें, माता-पिता की बातचीत आदि सब कुछ ग्रहण करता है। ऐसा ही अभिमन्यु और प्रह्लाद ने किया था। आज मनोविज्ञान भी यही कहता है कि गर्भावस्था और उसके बाद सात साल की उम्र तक का समय अतिग्रहणशीलता एवं संस्कारों के निर्माण का होता है।

जब बच्चा छोटा होता है तो आपकी बातों पर वह कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता है, लेकिन वह सात साल तक एक कैमरे की तरह सब कुछ अप्रत्यक्ष रूप से अंकित करता रहता है। उसके इर्द-गिर्द जो कुछ भी घटित होता है, वह सबकी फिल्म लेता है और बाद में वह उसे थोड़ा-थोड़ा प्रकाशित करता है। उन्नीस साल के बाद तो उसका प्रकाशन पूर्ण रूप से हो जाता है। इसलिए योग शास्त्र में यह लिखा गया है कि व्यक्ति के हृदय से डरो। खासकर बच्चों का हृदय बहुत ही कोमल और संवेदनशील होता है। किसी भी छोटे बच्चे को चार-पाँच दिन के अन्दर कुछ भी बोलना सिखलाया जा सकता है। शैशवावस्था में तो वह अंगूठा ही चूसता रहता है और अंतर्मुखी होता है। ऐसी अवस्था में आप उससे किसी भी भाषा में बोलिये, वह उसका अनुकरण करेगा, क्योंकि उसका मन सभी भाषाओं को जानता है, भावनाओं को जानता है, यह मेरा अनुभव है।

मनुष्य के अन्दर अपरिमित शक्ति है। संसार के प्रसिद्ध महारथियों, योद्धाओं, वैज्ञानिकों या कलाकरों की प्रतिभा हृदय की इस शक्ति का ही परिणाम है। इस महान् शक्ति को संभालने के लिए तीन काम प्रतिदिन करने होंगे, पहला—रात्रि में योगनिद्रा, दूसरा—मंत्र जप और तीसरा है—ध्यान का नियमित अभ्यास।

योगनिद्रा का एक प्रेरक अनुभव

नवीन कुमार सैठी, चण्डीगढ़ (यौगिक अध्ययन सत्र, फरवरी-जून 2018)

मैं अपने मित्र के पिता के साथ योगनिद्रा का एक विस्मयकारी अनुभव साझा करना चाहता हूँ। उनका एक दुर्घटना में गम्भीर दिमागी असंतुलन हो गया था तथा शरीर के एक भाग में पक्षाघात हो गया था। साथ ही अन्य अंगों ने भी काम करना बंद कर दिया था। वे अपनी आवश्यक जैविक क्रियाओं जैसे श्वसन, भोजन, मल-मूत्र विसर्जन इत्यादि के लिए भी मशीनों पर निर्भर हो गए थे, जिसकी वजह से उन्हें बेड-सोर हो गए थे। मुझे इस दुर्घटना का पता चार महीने बाद चला जब मुझसे इस समस्या के यौगिक उपचार के लिए कहा गया।

पहले दिन मैंने उनके कानों में हेडफोन द्वारा मंत्रोच्चारण करवाया। इससे उन्हें थोड़ा आराम मिला और अच्छी नींद आ गई। अगले दिन से उन्हें योगनिद्रा तथा पवनमुक्तासन भाग 1 का अभ्यास करवाना आरम्भ किया। हरदम लेटे रहने के कारण उनके पैर सूख गए थे, माँस का तो पता ही नहीं चलता था। पवनमुक्तासन का अभ्यास करवाने से जल्दी ही उनके हाथों और पैरों में रक्त संचार आरम्भ हो गया। योगनिद्रा के अभ्यास से उन्हें अच्छी नींद आने लगी तथा उनका दर्द भी काफी कम हो गया। दो-तीन सप्ताह के बाद वे अपने बेटे को पहचानने लगे। एक महीने में उनके एक हाथ में कुछ गतिशीलता आरम्भ हो गई। कुछ समय बाद उनके पैरों की माँसपेशियों में काफी सुधार हुआ तथा सहारे के साथ वे बैठने में भी सक्षम हो गये। तीन-चार महीनों के पश्चात् उनके लकवाग्रस्त अंगों में भी काफी सुधार आ गया। योगनिद्रा, मंत्रोच्चारण एवं सिमरन (जो उन्हें हेडफोन द्वारा सुनाए जाते थे) से उनकी दिमागी हालत में भी सुधार आने लगा और अब वे गर्दन हिलाकर हाँ-ना का उत्तर देने लगे।

एक दिन जब उनके दर्द का अनुभव काफी कम हो गया तो वे अपनी श्वसन नलिका और भोजन नलिका को निकालने का प्रयास करने लगे। इसके बाद उन्हें न्यूरोलॉजिस्ट डॉक्टर को दिखाया गया जिन्होंने कहा कि एक महीने बाद उनकी दोनों नलिकायें हटाई जा सकती हैं। अब वे दिन में जगने तथा रात में सोने में सक्षम हो गए और उनकी दवाइयों तथा देख-रेख पर होने वाला लाखों का खर्च भी कम हो गया। पवनमुक्तासन के अभ्यास की वजह से उनके बेड-सोर भी काफी ठीक हो गए। अब उनकी दिमागी हालत इतनी सुधर गई थी कि वे अपने परिजनों को पहचानने लगे थे तथा उन्होंने अपने लकवाग्रस्त अंगों पर भी नियंत्रण पा लिया था। 22 दिसम्बर 2016 को उनका एक्सीडेंट हुआ था तथा 6 महीनों के यौगिक अभ्यास से उनकी हालत में काफी सुधार हो गया था, पर दीपावली के बाद मौसम परिवर्तन के कारण उन्हें निमोनिया हो गया और दुर्भाग्यवश नवम्बर में उनका निधन हो गया।

कर्मयोग और जीवन का सुनियोजन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हमें जीवन का अनुभव चार चीजों के माध्यम से होता है—मूल प्रवृत्तियाँ (आहार, निद्रा, भय और मैथुन), हमारा मूलभूत स्वभाव, संस्कार तथा इन्द्रिय अनुभव। ये सभी मिल कर हमारे जीवन का मुख्य ऑपरेटिंग सिस्टम बनाते हैं। सत्त्व, रजस् और तमस्—ये तीन गुण इन चारों घटकों का साथ देने हेतु प्रकट होते हैं और जब ये गुण ऑपरेटिंग सिस्टम के साथ जुड़ते हैं, तब इसकी अभिव्यक्ति में परिवर्तन आ जाता है।

मूल प्रवृत्तियों का प्रबन्धन

कर्मयोग के अभ्यास के लिए व्यक्ति को जीवन के इस ऑपरेटिंग सिस्टम से प्रारम्भ करना होगा। इसके लिए ज्ञान के साथ संयोग जरूरी है। मान लो तुम अंधेरे में सड़क पर चल रहे हो और तुम्हारी नजर रस्सी के एक टुकड़े पर पड़ती है। तुरन्त मन में विचार आता है, 'बाप रे! साँप!' मन में एक बार यह विश्वास पैदा हो जाता है कि यह साँप है तो फिर तुम कभी उसे रस्सी का टुकड़ा नहीं समझोगे। जब उस चीज की साँप के रूप में पहचान बना लेते हो तब फिर वैसी ही प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होने लगती हैं—भय, घबराहट, दिल की तेज धड़कन और वहाँ से पलायन की इच्छा। उस समय यदि तुमसे कोई कह दे कि नहीं, यह तो सिर्फ रस्सी का टुकड़ा है तो तुम्हारी प्रतिक्रिया पूरी तरह बदल जाएगी। जैसे ही तुम जान जाओगे कि यह साँप नहीं, रस्सी का टुकड़ा है, तुम भय-मुक्त हो जाओगे, दिल की धड़कन सामान्य हो जाएगी और भाग निकलने की इच्छा भी विलीन हो जाएगी। इस प्रकार, ज्ञान के माध्यम से, समझदारी के माध्यम से, तुम मूल प्रवृत्तियों के एक घटक, भय को पराजित कर सकते हो।

मूल प्रवृत्तियों के प्रबन्धन में कठिनाई सिर्फ उनके साथ सजगता जोड़ने में है। *कामातुराणां न भयं न लज्जा*—जब काम-वासना प्रबल होती है तब व्यक्ति में न लज्जा रहती है और न ही भय। कामातुरता और उसके प्रति सजगता का अभाव, ऐसी स्थिति में व्यक्ति सभी प्रकार के प्रतिबन्धों और सीमाओं को लांघ जाता है। जब तुम किसी मूल प्रवृत्ति के आवेग का अनुभव करते हो तब तुम्हारी प्रतिक्रिया उस प्रवृत्ति के अनुरूप ही होती है। कोई भी व्यक्ति इस प्रक्रिया के प्रति सजग नहीं रह पाता, इसका विश्लेषण नहीं कर पाता। मूल प्रवृत्ति, चाहे वह आहार हो या निद्रा, भय अथवा मैथुन, उसके यौगिक प्रबन्धन में पहला सोपान होता है सजगता, अर्थात् यह जानना कि अमुक प्रवृत्ति क्रियाशील है।

दूसरा सोपान है विश्लेषण। विचार करो कि तुम्हारी जानकारी और समझ ठीक है या नहीं? क्या मैं वाकई साँप देख रहा हूँ या रस्सी के टुकड़े में साँप की कल्पना कर रहा हूँ? मैं किस विधि द्वारा यथार्थ को देख सकता हूँ? मूल प्रवृत्तियों के प्रबन्धन में विश्लेषण दूसरा कदम है।

तीसरा है संयम–अपनी प्रतिक्रियाओं पर अंकुश रखना, संयम और धैर्य बनाए रखना ताकि सजगता विकसित हो सके, विश्लेषण हो सके। एक बार जब सजगता परिपक्व हो जाती है और विश्लेषण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है, तब हम यह जान सकते हैं कि हमारी प्रतिक्रिया उपयुक्त है या नहीं। उपयुक्त और उचित प्रतिक्रिया हमेशा संयम पर आधारित होती है।

मूल प्रवृत्तियों में चौथा परिवर्तन ज्ञान के माध्यम से लाया जाता है। विश्लेषण के माध्यम से तुम प्रवृत्तियों के सही या गलत होने को समझते हो। फिर उस समझ

को ज्ञान के माध्यम से एक रचनात्मक शक्ति में परिवर्तित कर दो। इस प्रकार मूल प्रवृत्तियों के प्रबन्धन की ये चार विधियाँ हैं—सजगता, विश्लेषण, संयम और ज्ञान।

स्वभाव का प्रबन्धन

अगला चरण है स्वभाव की, चरित्र की सुव्यवस्था। मानव स्वभाव उन संस्कारों और गुणों पर आधारित है जो हम अपने जीवन में प्राप्त या जागृत करते हैं। जन्म के समय हमें कुछ संस्कार और गुण विरासत में मिलते हैं। वे ही हमारे मौलिक चरित्र और व्यक्तित्व को निर्धारित करते हैं।

कोई व्यक्ति आशावादी होता है तो कोई निराशावादी। कोई पुरुषार्थ में विश्वास रखता है तो कोई भाग्य में। कोई जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखता है, हमेशा खुश और प्रसन्न रहता है तो कोई नकारात्मक मनोवृत्ति रखता है और हमेशा निराश रहता है। मानव व्यक्तित्व के ये व्यवहार बाहर से आरोपित नहीं होते, बल्कि वे हमारे जन्मजात गुणों की अभिव्यक्ति होते हैं, जो हमारे जीवन में समय-समय पर प्रकट होते हैं।

अपने इस स्वभाव को हम कैसे रूपान्तरित कर सकते हैं जबकि हमारा मन, हमारी इन्द्रियाँ, हमारा पूरा जीवन बन्धन में है और हमारी सारी ऊर्जा बाहरी विषय-वस्तुओं की ओर ही प्रवाहित हो रही है? हमारी सजगता बहिर्मुखी है, वह भौतिक विषयों और इन्द्रिय-जनित संवेदनाओं में ही उलझी है। इस प्रकार हमारा स्वभाव भी बहिर्मुखी रूप धारण किये हुए है जिससे ईर्ष्या, निराशा, उदासी, घृणा, काम-वासना और लोभ जैसी नकारात्मक प्रवृत्तियों को सिर उठाने का अवसर मिल जाता है। इन सभी अभिव्यक्तियों की जड़ में होती है हमारे अपने स्वभाव के तुष्टीकरण की कामना।

आखिर हम किसी से द्वेष या ईर्ष्या क्यों करते हैं? इसलिए कि हमारे मन में ऐसी भावना पैदा होती है कि दूसरा व्यक्ति हमसे कुछ अधिक पा रहा है, चाहे वह अधिक आदर-सत्कार हो, या अधिक सुख, स्नेह अथवा धन-सम्पत्ति। जब हम किसी अन्य व्यक्ति के जीवन में परिपूर्णता पाते हैं और अपने जीवन में कमी, तब ईर्ष्या का जन्म होता है। दो व्यक्तियों के बीच तुलना ही ईर्ष्या का कारण बनती है। अगर तुम मेरे साथ तुलना न करो, और मैं भी तुम्हारे साथ तुलना न करूँ तो ईर्ष्या का कोई कारण नहीं होगा। घृणा, प्रेम या क्रोध जैसी अन्य भावनाओं के साथ भी यही बात लागू होती है।

इस बात को याद रखो कि किसी नई वस्तु को जन्म देने के लिए दो भिन्न वस्तुओं का एक साथ आना जरूरी होता है। यहाँ पर ये दो भिन्न वस्तुएँ हैं—'मेरी उदासी' और 'तुम्हारी खुशी'। जब तुम अपनी उदासी, अपने अभाव से जुड़ते हो और दूसरे व्यक्ति की परिपूर्णता, उसकी प्रसन्नता को देखते हो तब उस समय लोभ,

द्वेष और ईर्ष्या जैसी नकारात्मक वृत्तियाँ उभरकर आती हैं। ये तुम्हारी मनोदशा को बदल देती हैं, तुम्हारे ज्ञान के प्रकाश को अविद्या के आवरण से ढक देती हैं। तुम्हारी बुद्धि स्वत: मन्द पड़ जाती है। यही तुम्हारे स्वभाव की कहानी है।

अपने स्वभाव की नकारात्मक और हानिकारक वृत्तियों को कैसे सम्भालें? अपने जीवन में रचनात्मक सद्‌गुणों को अपनाकर। स्वभाव का रूपान्तरण अपने में एक साधना है। यदि तुम किसी के प्रति ईर्ष्यालु हो तो उस ईर्ष्या का क्या इलाज है? उस इलाज का पता लगाओ और अपने जीवन में ईर्ष्या से निपटने के लिए उसका प्रयोग करो। यदि कुण्ठा या निराशा हो रही है तब उसका उपाय क्या है? वह कोई बाहर की चीज नहीं, तुम्हारे भीतर की भावना है। उपाय की खोज करो और निराशा से छुटकारा पाने के लिए उसका उपयोग करो। घृणा भी एक नकारात्मक वृत्ति है, इसके इलाज की तलाश करो, तब जाकर तुम इस प्रवृत्ति को सम्भाल सकोगे।

नकारात्मक अवस्थाओं में सकारात्मकता लाकर ही अपने स्वभाव का प्रबन्धन करना है। अपने अन्दर से नकारात्मकता निकाल फेंकने का प्रयास मत करो। यह तुम्हारे स्वभाव का एक अंग है, तुम इसे बाहर नहीं कर सकते। यह जन्म से ही तुम्हारे साथ रहा है। मन की आनुवांशिक संरचना में ये सभी अनुभव घुले-मिले रहते हैं। तुम इन्हें मन के 'जीन्स', मन के डी.एन.ए. का हिस्सा समझ सकते हो। नकारात्मकता, घृणा, कामुकता, क्रोध, इन सभी के जीन्स होते हैं। तुम न इन्हें बदल सकते हो, न ही हटा सकते हो। इनके विनाश का मतलब है तुम्हारा अपना विनाश। इन नकारात्मक वृत्तियों से उबरने के लिए इनके प्रतिपक्ष सद्‌गुणों का विकास करो। तब तुम इन्हें आसानी से सम्भाल सकते हो। इस प्रकार एक नकारात्मक ऊर्जा को एक रचनात्मक शक्ति में परिवर्तित किया जा सकता है।

संस्कारों का प्रबन्धन

अपने तीसरे सॉफ्टवेयर, संस्कार को हम कैसे सम्भाल सकते हैं? संस्कारों को सबसे पहले ध्यान की प्रक्रिया के माध्यम से समझना पड़ता है। ध्यान का अभ्यास प्रत्याहार और धारणा से प्रारम्भ होता है। एक साधक केवल धारणा के स्तर तक जा सकता है, उसके आगे नहीं। ध्यान एक ऐसी अनुभूति है जो आम आदमी के पहुँच के परे है। जब व्यक्ति देहाध्यास से, अपनी शारीरिक पहचान से ऊपर उठ पाता है, तब जाकर वह ध्यान की अवस्था का अनुभव कर सकता है।

एक बार सन् 1977 में मैं तस्मानिया में कार से यात्रा कर रहा था। कार में मेरे अलावा कार-चालक भी था। हम लोग शहर से दूर एक निर्जन इलाके से होकर गुजर रहे थे। वहाँ पर एक झील थी, झील के किनारे एक विशाल वृक्ष था। मैंने क्षणभर के लिए उस वृक्ष की ओर देखा और कार आगे बढ़ गई। उसी क्षण मेरे दिमाग में कुछ परिवर्तन हुआ। मैं अपनी शारीरिक चेतना खो बैठा। मैं भूल गया

कि मैं कार में बैठा हूँ। कार में होने पर भी मैं यकायक वह पेड़ बन गया। बहुत ही डरावना अनुभव था वह!

वह ध्यान का अनुभव था। ध्यान एक भयावह अनुभव होता है क्योंकि जब तुम अपने शरीर की सजगता खो देते हो तब फिर क्या सहारा रह जाता है? थोड़ी देर के लिए मैं वह पेड़ बन गया था। मैं पेड़ के तने पर चींटियों और कीड़े-मकोड़ों के ऊपर-नीचे रेंगने की सनसनी का अनुभव करने लगा। मैं अपने पत्तों के बीच हवा के बहने का, उस बयार में अपनी शाखाओं के झूलने का अनुभव करने लगा। मैं अपनी जड़ों में झील के पानी की थपथपाहट का अनुभव कर रहा था। यह अनुभव कुछ क्षणों के लिए ही रहा, लेकिन ऐसा प्रतीत हुआ मानो यह घण्टों तक चला। एक मनुष्य के रूप में मेरी पहचान पूरी तरह विलीन हो गई, मेरा मन पूरी तरह अपने आपको वह पेड़ समझ बैठा। यही ध्यान की अवस्था है। ध्यान का अभ्यास किया नहीं जाता, यह तो मन की एक अवस्था है जो स्वत: साकार होती है। धारणा के सिद्ध होने पर जब मन ध्येय वस्तु के साथ पूरी तरह एकाकार हो जाता है तब उस अवस्था को ध्यान कहते हैं।

श्री स्वामीजी शायद ही कभी 'ध्यान' शब्द का प्रयोग करते थे। वे धारणा या एकाग्रता शब्द इस्तेमाल करते थे। हमारा सीमित मन बस वहीं तक जा सकता है। तुम कितनी तेजी से दौड़ सकते हो? तीन, चार या छ: किलोमीटर प्रति घण्टा। इससे ज्यादा तेज दौड़ने में तुम्हारा शरीर सक्षम नहीं। जिस तरह दौड़ने में शरीर की सीमाएँ हैं, उसी प्रकार एकाग्रता में भी मानसिक सीमाएँ हैं, जो ध्यान की अवस्था तक पहुँचने नहीं देतीं। एक साधक के रूप में तुम धारणा के स्तर तक ही जा सकते हो। इतिहास में आज तक कोई भी मनुष्य ध्यान की अवस्था को प्राप्त नहीं कर सका है। सभी साधक धारणा की स्थिति, सम्पूर्ण एकाग्रता की अवस्था तक ही पहुँचे हैं। उसके बाद ध्यान की अवस्था में उतरने के लिए शरीर के परे जाना होगा, इन्द्रियों के पार जाना होगा। इसलिए भले ही मैं ध्यान शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ, पर इसका मतलब ध्यान की उच्च अवस्था से नहीं लगाना, बल्कि प्रत्याहार और धारणा के प्रारम्भिक अभ्यासों से लगाना, जिनकी मदद से तुम अपने आन्तरिक स्वभाव, अपने आन्तरिक व्यक्तित्व के प्रति सजग हो सकते हो।

ध्यान के प्रारम्भिक चरणों में तुम अपने चित्त और भावनाओं की सजगता विकसित करते हो। यही प्रत्याहार और धारणा की प्रणाली है। जो लोग प्रत्याहार और धारणा के क्रमबद्ध स्तरों की उपेक्षा कर सीधे ध्यान लगाने का प्रयास करते हैं, वे ध्यान के सिद्धान्तों और अनुभूतियों को कभी नहीं समझ सकते। जैसे वर्तमान युग में समाधि प्राय: सभी की पहुँच के परे है, वैसे ही ध्यान का अनुभव भी सभी व्यक्तियों की पहुँच में नहीं है। फिर भी धारणा द्वारा बहिर्मुखी मन को एकाग्र करके तुम अपने सूक्ष्म मन, अपने चित्त के प्रति सजग बन सकते हो, उसे भली-भाँति जान सकते हो।

सूक्ष्म मन चित्रों की एक एलबम के समान है। पुस्तक के हर पन्ने पर एक चित्र है, परन्तु चित्रों को देखने के लिए तुम्हें पन्ने उलटने होंगे। इसी प्रकार से मनुष्य के चित्त की गहराइयों में जन्म-जन्मांतरों के संस्कारों की मुहर लगी है। यह तुम्हारे पासपोर्ट के जैसा है। तुम अपने नये पासपोर्ट का उपयोग अपनी वर्त्तमान यात्राओं के लिए करते हो और साथ ही अपने पुराने पासपोर्टों को भी रखे रहते हो क्योंकि उनमें तुम्हारी पुरानी यात्राओं का ब्यौरा रहता है, इमिग्रेशन की पुरानी मुहरें रहती हैं।

पुराने पासपोर्ट तुम्हारे अतीत के संस्कारों के प्रतीक हैं और नया पासपोर्ट तुम्हारे वर्तमान जीवन का। पुराने पासपोर्ट बताते हैं कि तुमने किन-किन देशों की यात्रा की है और उनमें लगी इमिग्रेशन की मुहरें इस बात की पुष्टि करती हैं। जब तुम अपने किसी पुराने पासपोर्ट को खोलते हो और देखते हो कि कई वर्ष पूर्व तुम अमेरिका गए थे तब उस यात्रा की यादें ताजा हो जाती हैं। उसी प्रकार अपने चित्त की पेटी खोलने पर तुम्हें किसी कर्म की इमिग्रेशन मुहर अर्थात् संस्कार मिलता है और तुम उसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हो। संस्कार को पहले खोजना पड़ता है और यह सम्भव होता है ध्यान की प्रक्रिया से। ध्यान के द्वारा हम अपने स्वभाव की गहराइयों में जा सकते हैं। मंत्र योग का अभ्यास भी इस प्रक्रिया में सहायक होता है।

मन के विक्षेप को, भटकाव को रोकने के लिए मंत्र एक शक्तिशाली साधन है। लेकिन मंत्र की सही ढंग से साधना कर पाना बहुत कठिन है। मुझे सन् 1966 में मंत्र दीक्षा मिली थी। श्री स्वामीजी पुराने शिवानन्द आश्रम के साधना हॉल की सीढ़ियों पर बैठे थे। उन्होंने मुझे बुलाया और कहा, 'बैठ जाओ।' फिर उन्होंने कहा, 'इस मंत्र को मेरे बाद दुहराओ।' वही मेरी मंत्र दीक्षा थी। उन्होंने मंत्र को एक बार कहा और मैंने उसे एक बार दुहराया। फिर मैं उसे भूल भी गया। मुझमें हिम्मत नहीं थी कि श्री स्वामीजी के पास जाऊँ और कहूँ, 'मैं अपना मंत्र भूल गया हूँ, क्या आप उसे दुबारा बतलाने की कृपा करेंगे?' इसलिए मैं चुप रह गया। कई महीने बीत गये। एक दिन मैं शान्ति से बैठा था। शरीर और मन शिथिल होते गए। सहसा मेरे मन में वह मंत्र बिजली-सा कौंध गया और मैं उसे दुहराने लगा। मुझे याद आ गया कि मुझे वही मंत्र दिया गया था। मैं इतना खुश था कि

मैं श्री स्वामीजी के पास दौड़कर गया और कहने लगा, 'स्वामीजी देखिये! मैं अब अपनी मंत्र साधना कर रहा हूँ।' मंत्र का स्मरण अचानक हो गया। हालाँकि मैं उसे भूल गया था, लेकिन गुरु द्वारा दिये गये मंत्र की शक्ति ऐसी थी कि वह मेरे अचेतन मन में सक्रिय रहा।

मैंने श्री स्वामीजी से पूछा कि मुझे कितनी मालाओं का मंत्र-जप करना चाहिए। उन्होंने कहा, 'एक माला ही काफी है, लेकिन पूरी सजगता के साथ।' और मैं आज तक उस एक माला को पूरी सजगता के साथ करने का प्रयास ही कर रहा हूँ। अगर मुझे केवल मंत्र के उच्चारण के साथ माला के मनकों को आगे खिसकाना हो तो मैं घण्टे भर में न जाने कितनी मालाएँ कर सकता हूँ। लेकिन जब मैं हर मंत्र के प्रति सजग रहकर जप करने का प्रयास करता हूँ तो कभी अंतिम मनके तक नहीं पहुँच पाता। पचासवें के बाद पता नहीं मन कहाँ चला जाता है। तब मुझे ख्याल आता है कि मन तो मंत्र पर टिका नहीं है। फिर मैं अपने मन को खींचकर वापस लाता हूँ और पुन: पहले मनके से जप प्रारम्भ करता हूँ। आज तक मैं मंत्र की एक माला भी पूरी नहीं कर पाया हूँ।

इन्द्रियों का संयम

ऑपरेटिंग सिस्टम का चौथा घटक इन्द्रियाँ है, जिनका प्रबन्धन उनके दिशान्तरण से किया जाता है। जब आँखें किसी रुचिकर वस्तु या व्यक्ति, जैसे एक सुन्दर फूल या एक अभीष्ट मित्र को देखती हैं, तब उस समय हमें अपने विचारों पर गौर करना चाहिए। उस फूल को देखकर मन में कुछ इस तरह के विचार उठने लगेंगे, 'वाह, क्या सुन्दर रंग-रूप है, कितनी मनमोहक सुगन्ध है!' यहाँ तक तो ठीक है पर इसके आगे सतर्कता आ जानी चाहिए। फूल के सौंदर्य की प्रशंसा करने के बाद तुम क्या करना चाहते हो?

उस समय तुम्हें अपने मन का, अपनी सजगता का दिशान्तरण करना चाहिए। तुम्हें अपने आप से कहना चाहिए, 'यह सुन्दर फूल मुझे पसंद जरूर आया लेकिन यह मेरी जरूरत नहीं है।' पसंद और जरूरत दो अलग चीजें हैं। रुचि से आवश्यकता भिन्न है। दोनों के भेद को पहचानना सीखो। जब तुम यह भेद कर सकोगे तब तुम अपनी इन्द्रियों को संयमित कर पाओगे। तब न मन और विचार इन्द्रियों के पीछे भागेंगे, न भावनाएँ। तुम अपनी इन्द्रियों को सम्भाल सकोगे, उनकी दिशा निर्देशित कर सकोगे और उन्हें सकारात्मक एवं रचनात्मक अभिव्यक्ति की ओर ले जा सकोगे।

यही वे विधियाँ हैं जिनके माध्यम से तुम अपने जीवन रूपी ऑपरेटिंग सिस्टम के चारों घटकों का सुनियोजन कर सकते हो।

–'कर्म और कर्मयोग' से उद्धृत

यौगिक अध्ययन का अविस्मरणीय अनुभव

दिव्या श्रुति, पटना (यौगिक अध्ययन सत्र, अक्टूबर 2017-जनवरी 2018)

बहुत सुन्दर सफर रहा इन चार महीनों का। सजगता में वृद्धि से लेकर अपनी प्रतिक्रियाओं को जाँचने की क्षमता तक, मैंने यहाँ बहुत कुछ सीखा और पाया। कर्मयोग के समय दृढ़ता एवं सकारात्मक कोशिश, सही नीयत बनाए रखने में मदद करती रही। अब कई बार मैं स्वयं को क्रिया-प्रतिक्रिया के दायरे से दूर पाती हूँ। निश्छल कर्मयोग व सेवा के द्वारा अपनी बनाई हुई संकीर्ण सीमाओं को लाँघने में मैं सफल रही। आदतों के दायरे से बाहर निकल कर ही सही मायने में इंसान अपने जीवन की शुरुआत करता है, यह मैंने कर्मयोग के दौरान समझा। विनम्रता और संकल्पशक्ति का जो विकास मेरे अन्दर हुआ, उसे मैं एक व्यक्तिगत सफलता मानती हूँ।

आसन-प्राणायाम के अभ्यास ने जहाँ मेरे शरीर को सक्रिय और ऊर्जावान् रखा, वहीं दूसरी तरफ कर्मयोग ने मुझे मानसिक एवं शारीरिक स्तर पर लचीला बनाए रखा, परिणामस्वरूप मेरे आत्मविश्वास और एकाग्रता में वृद्धि हुई। योगनिद्रा के माध्यम से मेरी मानसिक व शारीरिक सजगता में वृद्धि हुई और यहाँ होने वाले विभिन्न स्तोत्रों व मंत्रों के पाठ ने मुझे अपने जीवन के एक सूक्ष्म पक्ष से परिचित कराया।

स्वामीजी के सत्संग साधकों के लिए आशीष स्वरूप हैं, मानो सोने पे सुहागा। उन्होंने अपने एक सत्संग में बताया था कि भक्तियोग मात्र कर्मकाण्ड नहीं, बल्कि इसके द्वारा अपनी भावनाओं को संतुलित किया जा सकता है। उनकी इस सीख को हृदयंगम करने के बाद अब मैं अक्सर अपने आपको भावनात्मक समता की सहज अवस्था में पाती हूँ। मैं अपने आपको सौभाग्यशाली मानती हूँ कि ईश्वर, गुरुजी, पूर्वजों एवं मेरे माता-पिता के आशीर्वाद से मैं बिहार योग परिवार का हिस्सा बन पाई।

सत्यम् वाणी

इस पंचायत की ससुराल जाने वाली कोई तीन सौ नववधुओं को इस वर्ष सुहाग पेटियाँ प्रदान की जायेंगी। हर वर्ष यहाँ सुहाग पेटियाँ दी जाती हैं, लेकिन इस बार मेरे आस-पड़ोस में रहने वाली सभी नववधुओं का एक साथ चयन किया गया है। भारत में लड़कियाँ प्राय: पंद्रह वर्ष होते-होते ब्याह दी जाती हैं और एक-दो दिन ससुराल में रहकर अपने मायके लौट आती हैं। फिर सत्रह-अठारह वर्ष की अवस्था में वे अपने ससुराल वापस जाती हैं, जिसे द्विरागमन कहा जाता है। वह मायके से उनकी अंतिम विदाई होती है। इसी द्विरागमन के अवसर पर मैं उन नववधुओं को मंगल उपहार के रूप में सुहाग पेटियाँ देता हूँ। पेटी में पति के लिये भी सामान रहता है, जैसे, पैंट, शर्ट, कोट या घड़ी, और सुहागनों के लिये कीमती साड़ी, जेवर और सोलह शृंगार के साधन। वधू को सोलह शृंगार का सामान देना भारत की प्राचीन परंपरा है और इसे एक बहुत पुण्य कर्म माना जाता है। बिना सोना-चाँदी के सुहाग पेटी पूरी नहीं मानी जाती। अमीर हों या गरीब, सुहाग में हीरा-मोती या सोना-चाँदी के रूप में कुछ-न-कुछ जरूर देते हैं।

यह सब सीता जी के दहेज का सामान है, जो उन्हें 4 दिसम्बर को संध्या के समय अर्पित किया जाएगा। उसके बाद सीता जी का प्रसाद सब नववधुओं को दिया जाएगा। हमें लोगों से जो भी वस्त्र-आभूषण आदि का सामान मिलता है उसे सीता जी

के दहेज के रूप में ही स्वीकार करते हैं। तुम देखोगे कि उस दिन नन्हीं गुड़िया जैसी दिखने वाली सुन्दर-सलोनी नववधुओं को किस प्रकार यह उपहार प्रदान किया जाता है। वे सभी यहाँ आ चुकी हैं, मैंने उनसे बातचीत कर ली है। स्वामी सत्संगी, स्वामी निरंजन, स्वामी आत्मानंद, सभी तैयारी में लगे हुये हैं। भारत में शादी-ब्याह के समय ऐसी तैयारी आम बात है। शादी-ब्याह के अवसर पर जो भी मेहमान जाते हैं अपने साथ कोई-न-कोई उपहार जरूर लेकर जाते हैं, पर संन्यासियों को इन रस्मों में भाग लेने की अनुमित नहीं थी। शायद इसके पीछे यही भावना रही हो

कि संन्यासी अगर शादी-ब्याह में जाएगा तो कहीं खुद इस चक्कर में न फंस जाए। इसलिए उन्हें वैवाहिक समारोहों से अलग रखा गया था, लेकिन मैंने उन्हें इस समारोह में भाग लेने की छूट दे दी है। मुझे इस बात की कोई चिंता नहीं कि लोग क्या कहेंगे। जिसे यह पसंद न हो, वह यहाँ मत आए। इन सीता स्वरूपा बच्चियों के साथ किसी-न-किसी प्रकार का रिश्ता होना अच्छी बात है। यह भी एक रिश्ता है।

सीता-राम विवाह के प्रति यहाँ के लोगों में बड़ा उत्साह है। पिछले साल इस पंचायत के अधिकांश लोग पहुँचे थे, विशेषकर औरतें और बच्चे। पूरी दुनिया में और खासकर भारत में विवाह जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती है। लोग कहते हैं जन्म एक बार होता है, मृत्यु भी एक बार होती है और विवाह भी एक ही बार हेाता है। विवाह सौंदर्य और आनंद का प्रतीक है। बस भगवान शिव ही एक ऐसे हैं जिन्हें किसी भी वेष में विवाह में जाने की छूट है—नंग-धड़ंग या व्याघ्र-चर्म पहने या भस्मविभूषित, गले में सर्पमाला और हाथ में हुक्का लिए, उन्हें सब छूट है, पर दूसरे किसी को यह छूट नहीं है। जब विवाह सौंदर्य और आनन्द का उत्सव है तो इस अवसर पर सुन्दर-से-सुन्दर चीजों को प्रस्तुत करना चाहिये न!

भारत की देवभूमि—गढ़वाल

हमारे भारतीय वाङ्मय में गढ़वाल को देवभूमि कहते हैं। गढ़वाल का मतलब जहाँ यमुनोत्री, गंगोत्री, बद्रीनाथ, केदारनाथ और तपोवन जैसे तीर्थस्थान हैं। यह आदिकाल से भारतवर्ष की देवभूमि मानी गयी है। मन्दिर तो सब जगह हैं, बिहार में भी हैं, उत्तर प्रदेश, बंगाल, पंजाब और गुजरात में भी हैं। गोदावरी भी पवित्र है और नर्मदा भी, लेकिन हमारा भारतीय वाङ्मय, वेद, पुराण, रामायण या महाभारत पढ़ो तो देवभूमि का अर्थ एक ही होता है, गढ़वाल। गढ़वाल शुरू होता है हरिद्वार से। वह हरि का द्वार है। जैसे गेटवे टू इण्डिया होता है, वैसे हरिद्वार गेटवे टू हरि है। वैसे हरि और हर, दोनों का द्वार है। वैष्णव उसको हरिद्वार कहते हैं, शैव उसको हरद्वार कहते हैं, बोलते हैं शंकर जी का द्वार है क्योंकि केदारनाथ में शिवजी का महालिंग है। दूसरी ओर बद्रीनाथ में श्री नारायण जी स्वयं विराजते हैं। गंगोत्री में गंगाजी निकलती हैं और उधर यमुनोत्री में यमुनाजी निकलती हैं। तो इसे देवभूमि कहते हैं, और मजे की बात यह कि हिन्दुस्तान में जब लोग तीर्थ करना चाहते हैं पहले वहीं जाते हैं। देवघर नहीं आते, न ही कलकत्ते या उड़िसा जाते हैं। तीर्थ का मतलब हुआ उत्तराखण्ड। दक्षिण भारत में किसी को भी संन्यास लेना होगा, वह वहीं जायेगा। संन्यास की व्यवस्था और देव-दर्शन की व्यवस्था उत्तर भारत में है, इसलिये हरिद्वार से जो भूमि चालू होती है वह पवित्र मानी जाती है। गरीब-से-गरीब लोग, मजदूर वर्ग के लोग, सब तीर्थयात्रा के लिए वहीं जाते हैं, लाखों की संख्या में जाते हैं।

सन् 1988 में मुंगेर छोड़ने के बाद मैं वाराणसी चला गया था। वहाँ एक महीना रहा, फिर पशुपतिनाथ और अन्य तीर्थस्थलों की यात्रा करके दिल्ली चला गया। दिल्ली से एक टैक्सी लेकर हरिद्वार के लिए निकल गया। हरिद्वार से पहले यमुनोत्री गया। शाम होते-होते यमुनोत्री पहुँच गया। दूसरे दिन वहाँ से प्रस्थान किया और तीसरे दिन मैं गंगोत्री पहुँच गया। मुझे गंगोत्री बहुत पसंद है क्योंकि वहाँ पूरे जाड़े के समय रह चुका हूँ। चारों ओर बर्फ-ही-बर्फ थी। मेरा कमरा, कमरे की खिड़की-दरवाजा, सब बर्फ से ढका था। कमरे से बाहर निकलना भी मुश्किल था। कागज पर टट्टी करता और उसे खिड़की से बाहर फेंक देता। कमरे के अंदर मैं रोटी सेंक लेता था और दिनभर चिलम पीता था। बस गांजे का दम लगाना और प्राणायाम की कठोर साधना, दिनभर यही सिलसिला चलता था। मैं अपनी कुण्डलिनी जगाना चाहता था। लेकिन चिलम की इस आदत की मुझे कीमत चुकानी पड़ी। मुझे गंगोत्री छोड़ना पड़ा। नवम्बर, दिसंबर, जनवरी, फरवरी—पूरे चार महीने मैं वहाँ रहा था। वहाँ और कोई नहीं था।

इस बार मैं वहाँ तीन दिन ठहर गया। सातवें दिन मैं केदारनाथ में था। आठवें दिन बद्रीनाथ में और नौवें दिन ऋषिकेश में था। दस दिन में मैंने देवभूमि की तीर्थयात्रा पूरी कर ली। सात दिन में भी यह यात्रा पूरी हो सकती थी, लेकिन गंगोत्री प्रवास के कारण विलंब हुआ। बद्रीनाथ मंदिर तक तुम सीधे टैक्सी से जा सकते हो, गंगोत्री मंदिर तक भी टैक्सी से जा सकते हो। यमुनोत्री में टैक्सी 10 मील पहले छोड़कर तुम्हें ऊपर चढ़ना पड़ता है। केदारनाथ में भी ऐसा ही है, आखिरी चढ़ाई बड़ी कठिन है, बिलकुल सीधी चढ़ाई है। वहाँ जाने का सबसे अच्छा समय अप्रैल और मई का महीना है। इस समय तो वहाँ सभी मंदिर बंद रहते हैं। फिर अप्रैल में जाकर खुलेंगे।

केदारनाथ जी छोटे-मोटे शिवलिंग नहीं हैं, वहाँ तो भैंस की तरह चट्टान है, जो न जाने कितनी दूर जाती है अन्दर-ही-अन्दर। उसका अभिषेक घी से होता है। घी से ही शिवजी का मर्दन और मालिश होती है। बहुत ही सुन्दर स्थान है। हमलोगों के यहाँ दो प्रकार की मूर्तियाँ होती हैं। एक तो पूजा की स्थायी मूर्ति होती है, दूसरी वह मूर्ति होती है जिसे हटाया जा सकता है, कभी इधर-उधर यात्रा वगैरह में ले जाते हैं। दिवाली के बाद जब बद्रीनाथ बंद होता है तो भगवान नारायण की मूर्ति नीचे उतर आती है पाण्डुकेश्वर में जहाँ पण्डे और पुजारी लोग रहते हैं। इसके लिये दूसरी मूर्ति होती है जो यात्रा में नीचे आती है, और जिसकी फिर स्थानिक पूजा नीचे में होती है। बद्रीनाथ में मन्दिर पट बन्द रहता है, अन्दर में मूर्ति के सामने बहुत बड़ा दीया होता है, उसको जला देते हैं वे लोग और पट बिल्कुल बन्द कर देते हैं। जिस दिन वे पट खोलते हैं उस दिन तक वह दीया जलता ही रहता है। छः महीने बन्द रहता है मन्दिर। दीवाली पर बन्द होता है और अक्षय तृतीया पर

खुलता है। इसी तरह से नियम बना हुआ है चारों मन्दिरों में, क्योंकि ऊँचे पहाड़ों में बहुत जबरदस्त बर्फ पड़ती है।

नीचे जोशीमठ में एक मन्दिर है जहाँ कहते हैं कि शंकराचार्य ने तपस्या की थी। मठ में भी एक जगह है जो शंकराचार्य का स्थान कहा जाता है।

देखो, शंकराचार्य दो हुए हैं। जिनके बारे में तुम बोल रहे हो, उनका नाम था शंकर। उन्हें हम आदि शंकर कहते हैं, पहले शंकर जो केरल में पैदा हुए थे, नम्बूदरी ब्राह्मण थे, छः साल की उम्र में उन्होंने घर छोड़ा और संन्यास लिया। आपद् संन्यास लिया था माँ से। पिताजी मर गये थे, माँ से अनुमति ली थी और यह वायदा किया था कि वे उनकी अन्त्येष्टि करेंगे। संन्यासी किसी की अन्त्येष्टि नहीं करता, उसका यह एक नियम है, किन्तु उन्होंने कहा कि तुम्हारी अन्त्येष्टि हम करेंगे। केरल से फिर वे आये नर्मदा के समीप मान्धाता पर्वत पर, जहाँ पर अभी ओंकारेश्वर मन्दिर है। इन्दौर के पास नर्मदा नदी जहाँ से बहकर जाती है, वहाँ एक ज्योतिर्लिंग है जिसे ओंकारेश्वर महादेव कहते हैं। वहाँ गोविन्दपाद नाम के एक महात्मा रहते थे। शंकर ने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया और वहाँ कुछ समय रहे। छः साल की उम्र में उन्होंने वेदाध्ययन शुरू किया और दस साल की उम्र तक सारा अध्ययन पूरा कर लिया। उसके बाद ओंकारेश्वर छोड़ा और हिमालय में गंगाजी के किनारे आ गए। वहाँ पर बैठकर उन्होंने गीता, ब्रह्मसूत्र और उपनिषदों पर टीकाएँ लिखीं। सोलह साल की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते उन्होंने लिखना पूरा कर दिया। इसे शांकर-भाष्य कहते हैं जिसे आज दुनिया भर के लोग पढ़ते हैं, जिसपर विश्वविद्यालयों के बड़े-बड़े विद्वान् शोध करते हैं। इतने बड़े विद्वान् थे आदिशंकर।

सोलह साल की उम्र में उन्होंने दिग्विजय शुरू की। पहले काश्मीर गये, जहाँ के राजा ने उन्हें राजकीय सम्मान दिया। उनके साथ सेना की एक छोटी टुकड़ी भेजी, खजाना भेजा। जहाँ-जहाँ शंकराचार्य जाते थे वहाँ बाकायदा काश्मीर की सेना उनके साथ जाती थी। छोटी-सी टुकड़ी थी उनकी मदद करने के लिये, उनका तंबू लगाती थी, सब तरह की व्यवस्था करती थी। उन्होंने सब जगह जाकर वैदिक मत का प्रचार किया, उसका पुनरुत्थान किया, क्योंकि उस वक्त हिन्दुस्तान में बौद्ध और जैन धर्म फैला हुआ था। सारी सनातनी मूर्तियाँ हटाकर उन्होंने अपनी मूर्तियाँ रख दी थीं मन्दिरों में। तब शंकराचार्य ने वैदिक धर्म को पुनर्स्थापित किया। सोलह साल तक तीन बार उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर तक सम्पूर्ण भारत की यात्रा की। एक बार माँ की अन्त्येष्टि करने के लिये भी दक्षिण गये और बत्तीस साल की आयु में उन्होंने केदारनाथ में अपना शरीर छोड़ दिया।

उन्होंने चार जगहों पर पीठों की स्थापना की। पहला है जोशीमठ जो बद्रीनाथ के रास्ते में है। दूसरा द्वारिका, पश्चिम में है। पुरी पूर्व में है और शृंगेरी दक्षिण में।

इन चार मठों की स्थापना की और इन मठों से उन्होंने दशनामी परम्परा के संन्यासी तैयार किए। उन्होंने संन्यासियों को उनकी श्रेणी के मुताबिक दस भागों में विभक्त किया, जैसे सरस्वती, पुरी, भारती, गिरि, वनम्, तीर्थम् आदि। हम सरस्वती हैं, सरस्वती माने जो विद्वान् हों। पुरी वे हुए जो शहरों में रहते हैं, आश्रम, अस्पताल, अनाथालय या विद्यालय चलाते हैं। पहाड़ों में रहने वाले गिरि हुए, तीर्थों में रहने वाले तीर्थम्, जंगल में रहने वाले अरण्यम्। जो जहाँ रहता उस मुताबिक उपाधि दी, और जो पढ़े-लिखे थे उनको कह दिया सरस्वती। सरस्वती संन्यासियों को कहा, तुम जाकर विद्या का प्रचार करो। इस तरह उन्होंने दशनामी संन्यासियों को व्यवस्थित किया, अखाड़ों की स्थापना की।

इसके बाद फिर उनके और शिष्य हुए, जिनमें एक और शंकराचार्य आए हैं। उनका नाम आदि शंकराचार्य नहीं, सिर्फ शंकराचार्य है। शंकर और शंकराचार्य दो हुये थे, दानों ऐतिहासिक पुरुष थे। प्रथम आदिशंकर हुये और दूसरे अभिनव शंकराचार्य कहलाये। आम लोग शंकर और शंकराचार्य में भेद नहीं जानते।

क्या दूसरे शंकर भी अल्पायु थे?

नहीं, वे पूरी आयु तक जीवित थे। उन्होंने पूरे भारतवर्ष के अखाड़ों को व्यवस्थित किया। भारत में हमलोग इतिहास की ज्यादा चिंता नहीं करते। हमलोग ठोस कार्यों और उनके पीछे प्रेरणा व भावना को अधिक महत्त्व देते हैं। किसको फिक्र है कि कौन कहाँ रहा? हमलोग तिथियों और तारीखों के पीछे नहीं रहते। कौन कब पैदा हुआ था, यह जानना जरूरी नहीं है। इतिहास और तिथियों का हमारे लिये उतना महत्त्व नहीं जितना कृतियों और उपलब्धियों का है। इसलिए भारतवासी इतिहास की प्राय: उपेक्षा कर देते हैं।

अगर ऐतिहासिक तिथियों का लेखा-जोखा रखना ही हो तो भारत में उसकी एक अलग पद्धति है। अलग-अलग संकेतों के माध्यम से वह जानकारी रखी जाती है। जैसे कहेंगे कि जब श्रीकृष्ण का जन्म हुआ तो रोहिणी आकाश में नृत्य कर रही थी। पुराने ग्रन्थों में ऐसा ही लिखा रहता है। अब तुम्हें समझना होगा कि यह किस चीज का संकेत है। इसका मतलब यह है कि कृष्ण का जन्म रोहिणी नक्षत्र में हुआ था। कृष्ण जैसे महापुरुषों की जन्म-तिथियाँ प्रतीकों के माध्यम से बतायी जाती हैं, उन्हें सीधे तौर पर नहीं बताया जाता।

यह भारत की प्रथा है। महापुरुषों का जन्म इतनी तारीख को, इतने सन् में हुआ, ऐसा नहीं लिखते हैं। उस वक्त का एक छोटा-सा चित्र बना देते हैं कि आसमान में देवता फूल बरसा रहे थे, फलाने-फलाने देवता थे। उसका मतलब जानने के लिए तुम्हें पढ़ना पड़ेगा कि वह देवता उस वक्त किस नक्षत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। तब मालूम चलेगा कि उस दिन ग्रह-नक्षत्रों की क्या स्थिति थी। यह जो 1997-1998

वाला कैलेंडर है यह तो आज चल रहा है। हो सकता है आगे जाकर दूसरी संस्कृति आ जाए, इस कैलेंडर को खत्म कर दे। पहले विक्रम संवत् चलता था, खत्म हो गया। जो राजा राज चलाता है वह अपना कैलेंडर चलाता है। कल यह सभ्यता चली जायेगी, हो सकता है इसकी जगह चीनी, जापानी या रूसी लोग आ जाएँ, वे अपना कैलेंडर नहीं चलाएँगे क्या? और हो सकता है कल तुम्हारी बात सुनने लगें तो तुम्हारा विक्रम संवत् भी चल जाए, तब तो यह अंग्रेजी कैलेंडर खत्म हो जाएगा। जब कुछ सदियों बाद यह कैलेंडर नहीं रहेगा तो तिथि कैसे जानोगे, कैसे पढ़ोगे कि व्यक्ति किस दिन पैदा हुआ?

अगर यह लिख दिया जाए कि जिस दिन यह आदमी पैदा हुआ उस समय आसमान में नक्षत्रों की स्थिति यह थी तो बात दूसरी है। नक्षत्रों की स्थिति रोज नहीं बदलती। कोई-कोई नक्षत्र तो दौ सौ साल में अपनी स्थिति बदलते हैं, कोई-कोई पन्द्रह सौ साल में उस स्थान पर आते हैं। उसका मतलब वह घटना पन्द्रह सौ साल पहले हुई होगी, उसके पहले नहीं, ऐसा संकेत दिया जाता था। मगर वे लोग नक्षत्रों का नाम न लेकर देवी-देवता कह देते थे, जैसे रोहिणी या कृत्तिका। इस तरह से वे लोग संकेत करते थे। ज्योतिष-शास्त्र में समझाया जाता था यह सब।

ईसा मसीह के जन्म के समय पूर्व दिशा में तेज प्रकाश दिखा था। इसे दैवी घटना के रूप में नहीं, बल्कि भौतिक घटना के रूप में देखो। वह कौन-सा ग्रह या नक्षत्र था? वही ईसा के जन्म की तिथि थी। जब बुद्ध का जन्म हुआ तो सरोवर में कमल खिल गये। इसका मतलब क्या है? भारत में इतिहास लिखने की यही परम्परा है। हमलोग अंग्रेजी या किसी अन्य कैलेंडर के आधार पर महापुरुषों के

जनम-मरण का लेखा नहीं रखते क्योंकि हम जानते हैं कि इन पंचांगों से भ्रान्ति उत्पन्न होगी।

रामायण में कहा गया है कि जब राम और रावण का युद्ध हो रहा था तो देवता फूलों की वर्षा कर रहे थे। क्या इसका मतलब भी ग्रह-नक्षत्रों से है?

हाँ, जब अलग-अलग तिथियों पर राम-रावण युद्ध हो रहा था और इस बीच रावण परिवार के प्रमुख योद्धाओं की मृत्यु होती थी तो उन घटनाओं को महाकाव्य में प्रतीकों के माध्यम से दर्शाया गया है। रामायण में नक्षत्रों और ग्रहों की दशा प्रतीकात्मक रूप से बतायी गयी है। यदि वह जानकारी समझ सको तो हजारों वर्ष पुराने इतिहास में जा सकते हो। एक अमेरिकन इतिहासकार, विल डुरैंट ने ऋग्वेद और अन्य वेदों पर शोध कर वेदों का काल निर्धारित करने का प्रयास किया था। वेदों के काल-निर्धारण पर अनेक इतिहासकार और विद्वान् काम कर चुके हैं, उनके अपने मत हैं, लेकिन विल डुरैंट एक कदम आगे निकल गया। उसने वैदिक मंत्रों में इंगित ग्रह-नक्षत्रों की दशा और ग्रहण कालों का अध्ययन किया। खगोलीय दृष्टिकोण से वैसा ग्रहण लगभग 45,000 वर्ष पूर्व घटित हुआ था। गणित के आधार पर खगोलविद् यह बता सकते हैं कि अतीत में ग्रहण कब हुए थे और भविष्य में कब होंगे। वे यह भी बता सकते हैं कि सूर्यग्रहण होगा या चन्द्रग्रहण। ग्रहण की तिथि ही नहीं, उसका मिनट और सेकण्ड भी बताया जा सकता है। यहाँ तक बताया जा सकता है कि आज से पन्द्रह हजार साल बाद 15 जनवरी को अमुक समय में ऑस्ट्रेलिया में ग्रहण दिखाई पड़ेगा और भारत में नहीं दिखेगा।

इसी गणना के आधार पर विल डुरैंट ने कहा कि वेदों का काल कम-से-कम 45,000 वर्ष पुराना है। उसने पता लगाया कि ऋग्वेद में एक मंत्र ऐसे ग्रहण का उल्लेख करता है जो 45,000 साल पहले लगा था। अब बताओ, जो ग्रंथ 45,000 साल पुराने ग्रहण का उल्लेख करता है उसका रचना काल क्या होगा? इसी प्रकार वेदों-पुराणों में तुम देवी-देवताओं का जो वर्णन पढ़ते हो न, देवी-देवता आए, वे नाच रहे थे, फूल गिरा रहे थे, शंख बजा रहे थे, 'जय हो जय हो' बोल रहे थे, वह सब अन्तरिक्ष में नक्षत्रों की स्थिति की सूचना

है। जो ज्योतिर्विद् होते हैं उसकी तारीख निकाल सकते हैं। यह हम लोगों का भारत का तरीका है, क्योंकि भारतवर्ष के लोग यह जानते हैं कि कोई भी कैलेंडर स्थायी नहीं है। दुनिया सिर्फ चार-पाँच हजार साल पुरानी नहीं है। यह बहुत पुरानी है, न जाने कितनी सभ्यताएँ आई और गई हैं।

स्वामीजी, रामायण में वर्णन आता है कि युद्ध में मेघनाद ने मायावी बाण से अन्धकार कर दिया तो राम जी ने दूसरे बाण से अन्धकार दूर कर दिया। इसका तात्पर्य भी ग्रहण लगने से है क्या?

नहीं, कोई जरूरी नहीं। युद्ध विद्या हर युग में रही है। पहले के जमाने में मंत्र विद्या थी, अब नहीं है, क्योंकि अब आदमी बहुत नीच हो गया है। थोड़ी-थोड़ी बात में उसका पैनिक बटन दब जाता है। तुम्हें उल्लू कहें तो तुम चाँटा मार दोगे। अरे, उल्लू ही तो बोला, कौन-सी बड़ी बात हुई, इतनी जल्दी पैनिक बटन दबाने की क्या जरूरत थी? आज का आदमी इतना कमजोर हो गया है कि छोटी-छोटी बात पर उखड़ जाता है। अब किसी का बूढ़ा बाप जो उठ नहीं सकता, बैठ नहीं सकता, चल नहीं सकता, मर जाए तो बेटा रोता है। अरे, उसकी मुक्ति हो गई, यह क्यों नहीं सोचता?

आदमी इतना कमजोर हो गया है कि हर घटना का उसके मन पर बड़ा तीव्र असर पड़ता है। इसलिये प्रकृति ने कहा कि ऐसे आदमी को मंत्र शक्ति से वंचित करो, इसको लाइसेंस मत दो, वरना मंत्र शक्ति से तो परेशान कर देगा दुनिया को। लोग थोड़ी-थोड़ी बात पर एक-दूसरे को परेशान करेंगे। तुम्हारा अफसर तुम पर नाराज हो गया, मंत्र शक्ति का प्रयोग कर दिया उस पर। यह नहीं सोचा कि यह करने लायक है या नहीं। आखिर उसने क्या किया? थोड़ा तुम भी गलत थे, वह भी गलत था। आज समझदारी और सहनशक्ति की कमी हो गई है। घर में औरत कुछ कहती है, मर्द का हाथ उठता है तेजी के साथ। ऐसी हमारी पीढ़ी है। इसलिए कलयुग में कुछ शक्तियाँ प्रकृति ने हटा ली हैं। श्राप की शक्ति हटा ली है, मंत्र शक्ति हटा ली है।

राम-रावण के समय मंत्र शक्ति हुआ करती थी, और इन मंत्र शक्तियों को पुख्ता करने वाले देवी, देवता और महापुरुष थे। मंत्र शक्ति के माध्यम से उनके पास आग्नेयास्त्र, वरुणास्त्र और वायव्यास्त्र जैसे अस्त्र थे। विश्वामित्र ने श्रीराम को मिथिला जाते समय ये दिव्य अस्त्र दिये थे। दिव्य अस्त्र वे होते हैं जो अपने तरकस में नहीं होते, बल्कि मंत्र शक्ति से उनका संधान होता है। वे उस समय हुआ करते थे। उस वक्त श्राप भी लगता था। पर जैसे-जैसे कलयुग आया, मनुष्य की मति भ्रष्ट होती गई, उसके अन्दर क्षमा की शक्ति कम हो गई, निर्भयता की कमी हो गई, वैर भाव बढ़ गया, बगावत बढ़ गयी, छोटी-छोटी बातों से प्रभावित होने लगा, तब हमारे ऋषि-मुनियों ने सोचा कि ऐसे आदमी के हाथ में यह राइफल देना ठीक नहीं है। सब हटा लिया।

इसलिये अब तुम कितनी भी साधना करो, कितनी भी कुण्डलिनी जगाओ, कितना पूजा-पाठ करो, कुछ होने वाला नहीं है, क्योंकि तुम्हारे पास वह मानसिक शक्ति नहीं है। अरे! लोग ठण्ढी के दिनों में गर्म पानी के बिना नहा ही नहीं सकते, इतने कमजोर हो गये हैं। उपवास नहीं कर सकते, पैदल नहीं चल सकते। यहाँ से देवघर पैदल नहीं जा सकते, बतलाइये। इन लोगों को कहते हैं यहाँ से 3 किलोमीटर दूर रिक्शा मोड़ पर बाबा आश्रम ठहर जाओ तो बोलते हैं बहुत दूर है। सब नपुंसक हो गए हैं। शंकराचार्य अकेले केरल से केदारनाथ गये, फिर केदारनाथ से काश्मीर गये, काश्मीर से दक्षिण भारत गये, दक्षिण भारत से कितने चक्कर मारे उन्होंने। उन दिनों गाड़ी होती थी क्या? क्या गज़ब की शक्ति होती थी उनकी!

हमलोग बड़े दुर्बल हो गये हैं, इसलिए प्रकृति ने कुछ अलौकिक शक्तियाँ वापस ले ली हैं। मन्त्र-शक्ति अलौकिक शक्ति है। किसी को वरदान देना या श्राप देना अलौकिक शक्ति है। यह मनुष्य की अन्तर्निहित शक्ति थी जिसे प्रकृति ने वापस ले लिया है। अब तुम किसी को न शाप दे सकते हो, न वरदान ही दे सकते हो। मंत्र बहुत शक्तिशाली होते हैं, उन्हें बन्दूक की गोली की तरह प्रयोग में लाया जा सकता है। लेकिन साधारण आदमी अब इसका उपयोग नहीं कर सकता। यदि तुम घृणा, हिंसा और स्वार्थ से ऊपर उठ जाओ, यदि तुम पूर्णत: नि:स्वार्थ हो जाओ और संसार की सभी चीजों से उदासीन हो जाओ तो शायद यह शक्ति तुम्हें प्राप्त हो जाए।

यही कारण है कि भारत में जब हम किसी सन्त-महात्मा के पास आशीर्वाद के लिए जाते हैं तो यह पता कर लेना चाहते हैं कि वे घृणा और स्वार्थ से परे हैं कि नहीं। संसार में आखिर क्या है? जन्म और मृत्यु, दोस्ती और दुश्मनी, आशा और निराशा, घृणा और प्रेम। इन द्वन्द्वों से प्रभावित नहीं होना है। संसार में ये सब हैं, लेकिन मुझे इनसे क्या लेना-देना? मुझे इनसे विरक्त रहना है, इनके प्रति साक्षी भाव रखना है। साक्षी की तरह मैं सब देख रहा हूँ, उनमें लिप्त नहीं हो रहा हूँ, जैसे कमल जल में रहकर भी प्रभावित नहीं होता।

इस भाव से यदि कोई संत रहता है तो वह तुम्हें वरदान या शाप दे सकता है, वह मंत्र-शक्ति का प्रयोग कर सकता है। उसी प्रकार के योग्य व्यक्ति को मंत्र-शक्ति प्रदान की जाती है। मन्त्र-शक्ति पाने का अधिकारी वही है जो असीम संकल्प-शक्ति रखता हो, जिसे किसी बात की कोई चिन्ता न हो, जो अपनी फिक्र नहीं करता हो, जो बिल्कुल फक्कड़-मस्त हो और साथ ही वह इतना महान् हो कि उसे दु:ख और सुख, विपदा और सम्पदा कुछ भी प्रभावित न कर सके। इतना ही नहीं उसमें करुणा, दया, क्षमा, प्रेम और भक्ति का भण्डार हो। किसी को दु:खी देखकर उसका दिल पिघलता हो, बीमार को देखकर वह द्रवित होता हो और यदि कोई दुर्वचन कह दे तो उसे क्रोध न आये। कोई तुम से घृणा करे तो भी तुम विचलित न हो, यदि कोई प्यार का इजहार करे तो भी तुम इस कान से सुनकर उस कान से

निकल जाने दो। लेकिन कोई आकर बोले कि भूखा हूँ तो वह भूख तुम्हें अनुभव होने लगे। ऐसे सद्गुणों से युक्त व्यक्ति मन्त्र-शक्ति का परम अधिकारी हो सकता है। वह दूसरों को आशीष दे सकता है, वरदान दे सकता है।

आखिर ईसा मसीह को मन्त्र-शक्ति कैसे प्राप्त हुई थी? उन्हें इस बात की कोई चिंता नहीं थी कि लोग उनके बारे में क्या सोचते हैं। उन्हें सिर्फ उन लोगों का ख्याल था, जो दु:खी थे, जो गरीबी की जिन्दगी बसर कर रहे थे, जो वंचित और असहाय थे। उन्हें कभी अपने बारे में कोई ख्याल नहीं था। जब उन्हें सूली पर चढ़ा दिया गया तब भी उन्हें अपना नहीं, बल्कि उन लोगों का ख्याल था जिन्होंने उनपर ज़ुल्म ढाए थे। उन्होंने ईश्वर से उन्हें क्षमा कर देने की प्रार्थना की। ऐसे महान् व्यक्ति को पूर्ण मन्त्र-शक्ति प्राप्त थी। यह मन्त्र-शक्ति हमारे पूर्वजों को विरासत के रूप में प्राप्त हुई थी जब समाज आज के जैसा पतित और दुर्बल नहीं था।

यही कारण है कि रामचरितमानस में कहा गया है कि कलयुग में केवल हरि नाम और दान ही सहारा हैं?

जिस युग में हम रह रहे हैं, वह कलयुग है। कुछ लोग इसे लौहयुग भी कहते हैं, यंत्र युग भी इसका एक अर्थ है, लेकिन हमारे लिये कलयुग वह युग है जिसमें मनुष्य का मन प्रदूषित हो जाता है, वह अपने ऊपर नियंत्रण नहीं रख पाता। यह जानते हुए भी कि कोई चीज बुरी है, तुम्हारे लिये विपत्तिजनक है, फिर भी तुम उससे परहेज नहीं कर पाते हो, यही कलयुग है। सारा संसार कलयुग से ग्रस्त है। रात-दिन लोग एक-दूसरे की बुराई करने में लगे हैं। तुम स्टार टीवी देखो, बी.बी. सी. देखो, सी.एन.एन. देखो, दूरदर्शन देखो, सब जगह लोग एक-दूसरे की निंदा में लगे हैं। लोग जरूरत से ज्यादा संवेदनशील हो गये हैं, छोटी-छोटी बातों को भी सह नहीं पाते।

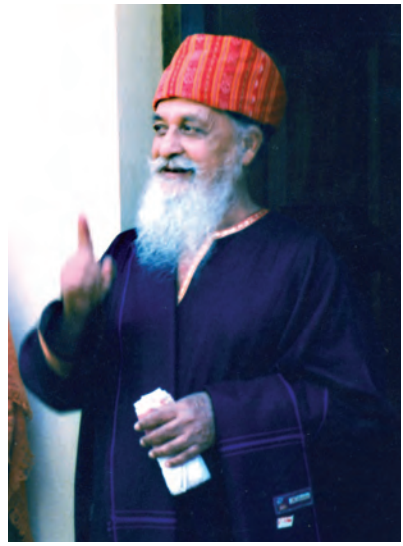

इसलिये सभी संत, चाहे वे ईसाई हों या हिंदू या मुसलमान, एक ही बात कहते हैं—सभी के प्रति करुणा का भाव रखो, इसी से तुम्हारा उद्धार होगा। स्वामी शिवानन्द जी कहा करते थे कि आध्यात्मिक जीवन की आधारशिला किसी भवन की नींव या शिक्षा की बुनियाद की तरह मजबूत होनी चाहिये। कॉलेज जाने पर हम भले ही रसायन

शास्त्र जैसे विषय पढ़ते हैं, लेकिन उससे पहले प्राथमिक विद्यालय में क-ख-ग ही पढ़ते हैं न? उसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन की प्राथमिक कक्षाओं में ध्यान या आत्मशुद्धि या ईश्वर-साक्षात्कार या विवेक-वैराग्य की बात मत करो। स्वामी शिवानन्द जी के अनुसार आध्यात्मिक जीवन का प्रारंभिक पाठ सेवा, प्रेम और दान है।

तुम अपनी पत्नी और बच्चों की सेवा कर रहे हो। इसमें कौन-सी बड़ी बात है, यह तो हर कोई कर रहा है। दूसरों की सेवा करना सीखो। तुम अपने बीवी-बच्चों से प्रेम करते हो, उन्हें सबकुछ देते हो, पर यह प्रेम और दान नहीं है। दूसरों को दो, दूसरों से प्रेम करो। यह प्राथमिक कक्षा पूरी करने के बाद आत्मशुद्धि, ध्यान और ईश्वर-साक्षात्कार जैसी उच्च आध्यात्मिक कक्षाओं में प्रवेश करो। यदि प्राइमरी क्लास की उपेक्षा कर सीधे आत्मशुद्धि की क्लास में छलांग लगाओगे तो यह स्वयं का दमन होगा, जिससे तुम्हारा व्यक्तित्व असामान्य हो जायेगा। ईश्वर प्राप्त करने के लिये इस युग में सबसे सरल साधन है सेवा, प्रेम और दान। सबको यह करना चाहिये, लेकिन इसे वास्तव में कर पाना इतना आसान नहीं है। मैं कहूँगा तो भी तुम नहीं करोगे।

जब मैं ऋषिकेश में था तो जो बात तुमसे कह रहा हूँ, उसे जानता तो था लेकिन करता नहीं था। मैं सेवा, प्रेम और दान पर व्याख्यान दे सकता था। थोड़ा बहुत करता भी था, लेकिन सिर्फ इसलिए कि स्वामी शिवानन्द जी का आदेश था। मैंने कुष्ठ रोगियों के लिये कॉलोनी बनवाई, उनके लिए काफी काम किया, लेकिन उस काम में मेरी व्यक्तिगत रुचि नहीं थी। गुरुजी ने आदेश दिया और मैंने आदेश का पालन किया। मुंगेर में भी मैं इस बात को जानता था, मगर अमल में नहीं ला पाता था। यहाँ रिखिया आने पर मुझे इसकी यथार्थ अनुभूति हुई, बात बिल्कुल साफ हो गयी। आध्यात्मिक जीवन में सबसे जरूरी चीज है दूसरों के लिये जीना, दूसरों के लिये पैसे खर्च करना, दूसरों के लिये सोचना और दूसरों को खुशी देना। समझ गये न?

सेवा, प्रेम और दान, इनमें से सेवा तो सबके लिए सम्भव है। कोई बीमार हो तो उसकी सेवा की जा सकती है, मगर दान तो सबके लिए सम्भव नहीं है। यदि कोई बहुत गरीब है, उसके पास कुछ भी नहीं है, खाने के लिये भी नहीं है, तो वह दान कैसे करेगा?

हर आदमी दान दे सकता है, गरीब-से-गरीब आदमी भी दे सकता है। अगर तुम्हारे पास दो रोटियाँ हैं तो एक मुझे दे दो। बेहतर तो यह होगा कि उस दिन खुद भूखे रह जाओ और दोनों रोटियाँ दे दो। खैर तब तो यह दान नहीं, त्याग कहलाएगा। कहने का मतलब यह कि गरीब व्यक्ति भी अपनी रोटी बांट सकता है, और जो अमीर है वह तो बहुत कुछ दे सकता है। एक महीना साबुन मत इस्तेमाल करो, एक महीना सिगरेट पीना बंद कर दो, एक महीना शराब पीना छोड़ दो, इस तरह पैसे बचा कर दान की रकम जुटा सकते हो। यह तो मैंने कुछ उदाहरण दिये, तुम

खुद बहुत-से तरीके सोच सकते हो। हर महीने पाँच-छ: सौ रुपये बचाओ और किसी ऐसे व्यक्ति या संस्था के पास भेज दो जो परोपकार में संलग्न हो। किसी भी अनाथालय या अस्पताल में यह रकम दे सकते हो।

इस साल हमलोग विकलांग बच्चों के लिये एक हजार ट्राइसाईकल ले रहे हैं। अगले साल हमलोग नया कार्यक्रम प्रारंभ करेंगे। यहाँ जो नया तपोवन भवन बना है वह विधवाओं के लिये है। यहाँ हमारी पंचायत की जो विधवाएँ हैं, जिनका कोई रहने का ठिकाना नहीं होता, आदमी के मर जाने पर औरत को निकाल देते हैं, वह कहीं नौकरी करती है, कहीं बर्त्तन धोती है, निरक्षर है, ऐसी महिलाओं को यहाँ आठ घण्टे रोज काम देंगे। क्या काम? माला जपना या मंत्र लिखना या रामचरितमानस पढ़ना—ये तीन काम। साक्षर महिलायें आठ घंटे रामचरितमानस पढ़ेंगी, निरक्षर महिलायें माला फेरेंगी और ॐ या श्री राम या ॐ नम: शिवाय का जप करेंगी। जो लिखना जानती हैं, उन्हें कागज पर ॐ ॐ लिखने के लिये कहा जायेगा। शाम को यहाँ की मजदूरी के हिसाब से उनके हाथ में पैसा पकड़ाया जायेगा। खेत में काम करने पर मजदूर की तीस-चालीस रुपये मजदूरी हो जाती है, जो हम यहाँ माला जपने और राम-राम कहने के लिये देंगें। अगर वे आठ घण्टे नहीं आ सकती हैं, चार घण्टे आयेंगी तो उनको आधा दिन का मजदूरी पकड़ाया जायेगा। अगर कहेंगी कि हम एक घण्टा ही आयेंगी तो घण्टे का मजदूरी उनको दे दिया जायेगा।

हमारे समाज में स्त्री जाति बहुत उपेक्षित है, और स्त्रियों में विधवा वर्ग तो बहुत ही ज्यादा। उनके बारे में सब गलत चीजें कही गई हैं। मर्द विधुर होता है तो वही

कपड़े पहनता है, लेकिन औरत विधवा होती है तो सफेद कपड़ा पहनना पड़ता है। क्या यह गलत नहीं है? क्या वही कानून मर्द पर भी लागू नहीं होना चाहिये? जब सबके लिए समान नियम न हों तो उसे अन्याय कहा जाता है। इसलिये हमें लगता है कि इस वर्ग के प्रति भी शायद हमारा कुछ कर्तव्य होता है। यह काम अगले साल मकर संक्रान्ति से बड़े पैमाने पर शुरू कर रहे हैं। शुरू में सौ विधवाओं को रखेंगे। हमारे पास बहुत-से आवेदन आये हैं, लेकिन प्रयोग के तौर पर हमलोग सौ लेंगे। कैसे उनसे काम लेंगे, उनका पहनावा क्या होगा, कितनी मालाओं की आवश्यकता होगी, कितने मंत्रों का जाप उनसे करायेंगे, यह सब तय करना होगा। इस कार्यक्रम से स्वामी निरंजन बहुत खुश है और मैं भी। युवतियों को तो हर कोई चाहता है, पर विधवाओं का ख्याल कौन रखना चाहता है? यह काम हम करेंगे, बाद में दूसरे लोग भी इससे प्रेरणा लेकर करें।

अब जैसे हम ट्राइसाईकल दे रहे हैं तो शहरों में कितनी मारवाड़ी संस्थाएँ हैं, मन्दिर हैं, उन्हें भी चाहिये कि विकलांग लोगों को ऐसी साईकल दें। ऐसा तो नहीं कि केवल हम दे सकते हैं, सब दे सकते हैं। अखिर डेढ़-दो हजार रुपया तो दाम है। क्या एक आदमी इतनी रकम अपनी जेब से नहीं निकाल सकता? हर घर में माँ सोच ले, हर घर में बच्चा सोच ले, कम-से-कम घर में छोटे बच्चे के मन में ख्याल आ जाए कि पुण्य का काम करो, किसी विकलांग व्यक्ति को एक साईकल दिला दो। कुछ दिन सिनेमा मत जाओ, कोका-कोला मत लो, रकम अपने आप हो जाएगी।

बच्चों और बड़ों, स्त्रियों और पुरुषों के मन में दूसरों के प्रति सद्भावना जागृत करना बहुत आवश्यक हो गया है, नहीं तो एक दिन हम सब लोग मारे जायेंगे, सामाजिक अराजकता हो जाएगी। सब लुटेरे निकलेंगे। देख लेना, दिन-दहाड़े तुम्हारा घर लूटा जायेगा। आखिर जब समाज थक जाता है तो क्रान्ति पर उतर आता है न? इसलिये डेढ़-दो हजार की साईकल लेने में क्या फर्क पड़ता है? हम तो हजार देंगे, हमने सोच लिया है और अभी तो शुरू हो गया है उनका आना।

इसी तरह से सबके मन में यह भाव होना चाहिये कि दूसरों का थोड़ा भला करें, किसी भी तरह से। दूसरें का भला करना आज मनुष्य का पहला कर्तव्य है। चाहे पढ़ा-लिखाकर हो या दवाई देकर हो या लंगड़े की मदद करके हो, किसी भी रूप में मदद करना मनुष्य का धर्म है। जो सम्पन्न और समर्थ हैं उनका तो यह प्राथमिक धर्म बन जाता है। जितने भी व्यापारी हैं, जितने भी दुकानदार हैं, जितने भी मारवाड़ी हैं, जितने भी और अमीर लोग हैं, उनको यह सब सोचना चाहिये। मन्दिर के पण्डों को भी सोचना चाहिये। आखिर मन्दिर के पास काफी पैसा नहीं होता है क्या? वह तो सारे देवघर के लंगड़ों को साईकल दे सकता है। आखिर भगवान शिव केवल मंदिर में ही हैं या सर्वव्यापी हैं?

–23 नवम्बर 1997, रिखियापीठ

आरोग्य की ओर योग यात्रा

लौकेश दानी, संयुक्त राज्य अमेरिका

मैं अमेरिका में एक आई.टी. इंजिनीयर हूँ और यह मेरी योग यात्रा की कहानी है, जिसकी शुरुआत हुई एक दुर्घटना से जिसमें मैंने अपना स्वातंत्र्य व स्वावलम्बन खो दिया, पर योग के माध्यम से पुन: आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास प्राप्त कर पाया।

दुर्घटना और शल्य चिकित्सा

4 जुलाई 2013 के दिन (जो संयोग से अमेरिका का स्वतंत्रता दिवस है) मैंने अपने कुछ मित्रों के साथ स्काई-डाइविंग जाने की योजना बनाई। मन में थोड़ा भय तो जरूर था कि हवाई जहाज से कूदने का अनुभव कैसा होगा, पर मैंने सपने में भी नहीं सोचा था कि ऐसी गम्भीर चोट लग जाएगी।

हमलोग हवाई जहाज पर सवार हुए। मेरे साथ मेरे ट्रेनर थे, एक तरह से मेरे जीवन की डोर उन्हीं के हाथ में थी। हम दोनों हवाई जहाज से कूदे। आसमान में तेज रफ्तार से गिरने का और फिर पैराशूट के सहारे जमीन पर उतरने का मैं खूब आनंद ले रहा था। अचानक कुछ झटका-सा लगा और अगले क्षण मैंने अपने आपको जमीन पर पाया। किसी तरह मैं अपने ट्रेनर से अलग हो गया था और बड़ी जोर से जमीन पर गिरा। नितम्बों पर जोर का आघात लगा जिससे मेरे मेरुदण्ड की L1 कशेरुका में फ्रैक्चर हो गया और स्पाइनल कॉर्ड भी क्षतिग्रस्त हो गई।

मुझे समीपवर्ती अस्पताल ले जाया गया जहाँ मुझे सारा समय प्लास्टिक का कमरबंद बाँधे रखने की सलाह दी गई। डॉक्टर यही आशा कर रहे थे कि शायद सर्जरी के बिना ही चोट ठीक हो जाए। लेकिन पीठ में असहनीय दर्द बना रहा। साथ ही बतलाया गया कि मैं अब स्वेच्छापूर्वक मल और मूत्र का त्याग नहीं कर पाऊँगा, क्योंकि तत्सम्बन्धी तंत्रिकाएँ भी क्षतिग्रस्त हुई हैं। मुझे अस्पताल में कैथेटर और सपॉज़िटरी की मदद से मूत्र और मल त्याग करने का प्रशिक्षण दिया गया।

अस्पताल से छूटने के बाद मैंने पूछताछ जारी रखी और एक डॉक्टर के सम्पर्क में आया जिसने मेरुदण्ड में सर्जरी का सुझाव दिया ताकि टूटी हुई कशेरुका और स्पाइनल कॉर्ड को अपनी सही जगह पर बिठाया जा सके। मैंने सुझाव मान लिया और 17 सितम्बर 2013 को सर्जरी हुई जिसमें टूटी हुई कशेरुका को निकाल दिया गया और उसकी जगह धातु लगाया गया। मेरी स्पाइनल कॉर्ड, जो दुर्घटना के कारण पिचक गई थी, अब अपनी सामान्य स्थिति में लौट आई। उस समय डॉक्टरों को यह भी पता चला कि मेरे मूत्राशय और मलाशय को नियंत्रित करने वाली तंत्रिकाएँ अभी भी जीवित हैं और कुछ हद तक संवेदनाएँ भेज रही हैं।

ऑपरेशन के सात-आठ महीने बाद मैं धीरे-धीरे वॉकर के सहारे दुबारा चलने लगा। पैरों में दर्द भी कम हो गया था। मूत्राशय में संवेदना बढ़ गई थी, लेकिन फिर भी मुझे कैथेटर और सपॉज़िटरी का उपयोग करना पड़ता था। मैं विभिन्न उपचार पद्धतियों की खोज और प्रयोग करता रहा, लेकिन तब तक कुछ काम नहीं बना जब तक मुझे स्वामी आत्मस्वरूप ने योग की दुनिया से परिचित कराया।

मेरी योग यात्रा

पूरे समय मेरी पत्नी ने हिम्मत नहीं हारी और हर किसी से पूछताछ करती रही कि क्या वे मेरी समस्या के निदान के लिए किसी अच्छे डॉक्टर या चिकित्सा प्रणाली को जानते हैं। अंत में किसी मित्र के सम्बन्धी के माध्यम से हमें स्वामी आत्मस्वरूप और उनके जमुई स्थित योग केन्द्र के बारे में पता चला। शुरू में काफी संशय था और मैं बिहार जाकर यौगिक उपचार आजमाने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं था। लेकिन उस मित्र ने अनेक लोगों का अनुभव बताया जिन्हें वहाँ जाकर लाभ हुआ था। अंत में हमने भगवान से सफलता की प्रार्थना करते हुए बिहार जाने का निर्णय ले लिया। और फिर मेरी योग यात्रा बड़े ही विस्मयकारी ढंग से चलने लगी।

प्रथम दिवस

जब हम जमुई पहुँचे तो स्वाभाविक रूप से मन में अनेक प्रश्न और संदेह थे। स्वामी आत्मस्वरूप ने आश्रम में हमारा स्वागत किया। हम रात में देर से पहुँचे थे, तो उन्होंने हमें विश्राम करने और अगली सुबह मिलने के लिए कहा। अगली सुबह आश्रम का बगीचा, पेड़-पौधे व गउएँ देखकर सुखद अनुभूति हुई। स्वामीजी से भेंट करके उन्हें अपनी दुर्घटना और उसके बाद की चिकित्सा की पूरी जानकारी दी। उस भेंट के दौरान मुझे योग का पहला पाठ मिला जिसमें योग के बारे में अनेक शंकाओं का समाधान हुआ। मुझे पता चला कि योग व्यायाम नहीं, बल्कि एक स्वस्थ जीवन जीने की प्राकृतिक प्रक्रिया है। योग का अभ्यास आराम से और सुखपूर्वक करना चाहिए। यह जानकर मेरे मन से एक बड़ा डर निकल गया कि कहीं मुझसे ऐसे कठिन अभ्यास तो नहीं कराए जाएँगे जिनसे मेरे मेरुदण्ड को और नुकसान पहुँचे।

हर नौसिखिये की तरह मैं भी पूछता रहा कि मेरी समस्या के लिए कौन-सा योगाभ्यास है। स्वामीजी ने मुझे धैर्यपूर्वक समझाया कि योग केवल किसी एक लक्षण पर केन्द्रित न रहकर, इड़ा और पिंगला के संतुलन द्वारा सम्पूर्ण स्वास्थ्य लाने का प्रयास करता है। उन्होंने यह बात एक दृष्टान्त से समझाई। किसी दफ्तर में मरे हुए चूहे की दुर्गंध फैल गई तो उसे दूर करने के लिए कई लोगों को बुलाया गया। हर कोई दफ्तर के किसी एक विभाग में ही खोजबीन करता। अगर वहाँ चूहा नहीं मिलता तो वे हार मान लेते। एक व्यक्ति ने योग का सिद्धांत अपनाते हुए पहले सब

विभागों को खाली किया, मरे हुए चूहे का पता लगाया और फिर सब कुछ पूर्ववत् सजा दिया। इसी उदाहरण के अनुरूप मेरा उपचार तीन विभागों में बाँटा गया–

1. शरीर में लचीलापन और मन में सकारात्मकता लाना।
2. मूत्राशय और मलाशय को पुन: सक्रिय करना।
3. समग्र शरीर का समायोजन करके मूत्राशय व मलाशय पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त करना।

इस आधार पर मेरा यौगिक उपचार शुरू हुआ। सबेरे योगाभ्यास की कक्षा और उसके बाद यौगिक सिद्धान्तों, योग निद्रा तथा मंत्रोच्चार की कक्षाएँ होतीं। साथ ही आहार नियमित समय पर और संतुलित एवं पौष्टिक रखा गया।

दिवस 2 से दिवस 5

प्रात:कालीन योगाभ्यास–सबसे पहले अपने शरीर के जोड़ों को तनावरहित बनाने के लिए पवनमुक्तासन भाग 1 का अभ्यास कराया गया। हर दिन स्वामीजी कहते कि अभ्यास में सुधार हुआ है जिससे मेरा उत्साह बना रहता। उचित श्वसन के साथ इन अभ्यासों को करने से काफी लाभ हुआ।

दोपहर–इस समय मैं घुमा-फिरा कर एक ही प्रश्न करता कि मुझे अपनी स्थिति में अंतर कब दिखाई देने लगेगा। स्वामीजी दूसरे मरीजों के उदाहरणों और अन्य दृष्टान्तों के माध्यम से मेरे प्रश्नों का उत्तर बड़े धैर्य के साथ देते और मेरे विश्वास को बनाए रखते।

योग निद्रा–मैं इस आश्चर्यजनक विधि से परिचित हुआ, जिसमें मुझे गहन विश्रान्ति का अनुभव हुआ। कभी-कभी मैं गहरी नींद में भी चला जाता, और बाद में सोचता कहीं इससे कुछ गड़बड़ तो नहीं हो जाएगी, लेकिन स्वामीजी मुझे आश्वासन देते कि शुरू में ऐसा होना स्वाभाविक है। वे समझाते कि अभ्यास के दौरान किसी भी विचार को दबाने या हटाने की जरूरत नहीं। योग निद्रा ने कुछ ही समय में चमत्कार दिखाना शुरू किया।

मंत्रोच्चारण–प्रतिदिन सबेरे मैं महामृत्युंजय, गायत्री और दुर्गा जी के मंत्रों का पाठ करता, जिससे मुझे ईश्वर और उनकी कृपामयी शक्ति से जुड़ने का अवसर मिलता। कुछ समय के लिए मुझे लगता जैसे मैं किसी अस्पताल में मरीज नहीं, बल्कि किसी मंदिर में बैठा भक्त हूँ। इससे मेरे मन पर गहरा, सकारात्मक प्रभाव पड़ा।

दिवस 6 से दिवस 14

धीरे-धीरे स्वामीजी मुझे विभिन्न योगासनों में गहराई से ले जाते गए, पर मुझे कभी यह महसूस नहीं हुआ कि मेरे लिए कुछ कठिन है। इस समय तक मेरा जीवन दो बैसाखियों के सहारे चल रहा था, सपॉज़िटरी और कैथेटर। स्वामीजी ने एक बैसाखी हटा दी और उसके स्थान पर मेरी अँगुली को रख दिया। उन्होंने मुझे मूल शोधन की

क्रिया सिखलाई। शुरू में मुझे हिचक जरूर हुई, पर उसके बाद जब मल निष्कासन आसानी से होता तो लगता कि कम-से-कम एक दिन तो बिना सपॉज़िटरी के बीता।

योग निद्रा, मंत्रोच्चार और विभिन्न प्रकार का सुपाच्य, रेशेदार आहार जारी रहा। हर दिन मुझे योग निद्रा में कुछ प्रगति महसूस होती और मैं स्वामीजी को अपना अनुभव बताता। एक बार जब मैं मूल शोधन का अभ्यस्त हो गया तो स्वामीजी ने मुझे कैथेटर का प्रयोग कम करने और मूत्र विसर्जन के लिए भी मूल शोधन का इस्तेमाल करने को कहा। इस विधि से थोड़ा-सा मूत्र-विसर्जन करने में सक्षम हुआ।

दिवस 15 से दिवस 25–जीवन का कायाकल्प

धीरे-धीरे मैं उन आसनों को अभ्यास करने लगा जो पहले असंभव प्रतीत होते थे। स्वामीजी के निर्देशन में मैं तिर्यक् भुजंगासन, मार्जारि आसन और उदराकर्षणासन का एक सरल प्रकारान्तर कर पाया। जब उन्हें लगा कि पर्याप्त प्रगति हो चुकी है तो उन्होंने मुझे वज्रोली और अश्विनी मुद्रा के सहारे खुद से मूत्र विसर्जन करने का सुझाव दिया। मुझे आज भी याद है जब मैंने यह पहली बार आजमाया। मेरा मूत्राशय भरा हुआ था, फिर भी मूत्र नहीं निकल पा रहा था। मैं कैथेटर का प्रयोग करने जा ही रहा था कि मूत्र की कुछ बूँदे निकलीं। अंत में वह दिन भी आया जब मैंने दिनभर कैथेटर का इस्तेमाल नहीं किया, केवल रात के समय किया।

फिर स्वामीजी ने मुझे लघु शंखप्रक्षालन, कुंजल एवं नेति की अद्भुत षट्कर्म विधियों से परिचित कराया। मेरा शरीर अब ताड़ासन, तिर्यक् ताड़ासन और कटि चक्रासन करने के लिए लचीला हो चुका था। हर दो गिलास पानी गटकने के बाद इन आसनों को करने की यह प्रक्रिया मुझे शुरू में थोड़ी भारी जरूर लगी लेकिन जब अपने आप मल विसर्जन होने लगा तो आशा की एक किरण जगी। एक दिन ऐसा भी आया जब मुझे मल-त्याग के लिए मूल शोधन की भी जरूरत नहीं पड़ी।

लगातार योगाभ्यास द्वारा मैं अपने मूत्राशय पर भी धीरे-धीरे नियंत्रण पाने लगा। तीन वर्षों से निष्क्रिय पड़ा मूत्राशय अब फिर से काम करने लगा। स्वामीजी ने मुझे रात में भी कैथेटर का प्रयोग न करने, बल्कि वज्रोली के माध्यम से बारंबार मूत्र विसर्जन की कोशिश करते रहने का सुझाव दिया। कुछ समय बाद मैं इसमें सक्षम भी हो गया।

ईश्वर, स्वामी सत्यानन्द जी और स्वामी निरंजनानन्द जी के आशीर्वाद तथा स्वामी आत्मस्वरूप के कुशल मार्गदर्शन से मैंने स्वास्थ्य व स्वाधीनता पाने के सफर का एक लम्बा भाग तय कर लिया है। पूरी तरह से ठीक होने में अभी और समय लगेगा पर अब आगे का मार्ग स्पष्ट है। स्वामीजी के निर्देशन में मैं अपनी मंजिल की ओर कदम-दर-कदम बढ़ते जाऊँगा। मैं और मेरा परिवार बिहार योग विद्यालय, मुंगेर तथा योग केन्द्र, जमुई के सदा आभारी रहेंगे कि उन्होंने मेरे अंधकारमय जीवन को आरोग्य के आनन्द से पुन: आलोकित कर दिया।

योगा एवं *योगविद्या* प्रसाद

सन् 2013 में बिहार योग विद्यालय ने अपनी स्वर्ण जयन्ती मनाई, जिसका समापन अक्टूबर 2013 में आयोजित विश्व योग सम्मेलन के साथ हुआ। इस ऐतिहासिक सम्मेलन में यह स्पष्ट हो गया कि योग को नगर-नगर डगर-डगर पहुँचाने का संकल्प सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लिया गया है। 50 वर्षों की अवधि में दुनियाभर के योग साधकों और योग प्रेमियों की मदद से प्राप्त यह उपलब्धि यौगिक पुनर्जागृति की द्योतक है।

विश्व योग सम्मेलन के पश्चात् बिहार योग विद्यालय के दूसरे अध्याय का श्रीगणेश हो गया है, जिसका लक्ष्य भावी पीढ़ियों के कल्याण के लिए स्वामी शिवानन्द जी और स्वामी सत्यानन्द जी की परम्परा से प्राप्त योग विद्या का संरक्षण और संवर्धन है।

इस दूसरे अध्याय में बिहार योग विद्यालय *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाओं को गुरु परम्परा के आशीर्वाद सहित प्रसाद स्वरूप प्रस्तुत कर रहा है। वर्त्तमान डिजिटल युग में योग विद्या के प्रभावी प्रचार-प्रसार हेतु *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाएँ अब पी.डी.एफ. फॉरमैट में डाउनलोड हेतु उपलब्ध हैं, तथा साथ ही IOS एवं Android प्लैटफार्मों पर नि:शुल्क एप्प के रूप में उपलब्ध हैं।

_योगा_ पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/

_योगविद्या_ पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

IOS प्लैटफार्म पर *योगा* एवं *योगविद्या*, दोनों पत्रिकाओं को पढ़ने के लिए इस एप्प को डाउनलोड करें–https://itunes.apple.com/us/developer/bihar-school-of-yoga/id1134424786

Android प्लैटफार्म पर *योगा* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें – https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yoga

Android प्लैटफार्म पर *योगविद्या* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें – https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yogavidya

***योगा* पत्रिका की पुरानी प्रतियों के संग्रह** को पढ़ने तथा उनमें किसी विषय को खोजने हेतु देखें–http://www.yogamag.net/archives.shtml

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2017
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2018

अगस्त 6-11	क्रिया योग यात्रा 1
	क्रिया योग यात्रा 2 एवं तत्त्व शुद्धि
अगस्त 20-25	क्रिया योग यात्रा 3 एवं तत्त्व शुद्धि 2
सितम्बर 17-23	राज योग यात्रा 1, 2 एवं 3
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-
बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।